



भारतीय ज्ञानपीठ
काशी



■ ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला-हिन्दी-ग्रन्थाङ्क-१३१

सूने अँगन रस बरसै

लक्ष्मीनारायण लाल

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

निवेदन

अपनी कहानियोंके इस प्रथम संग्रहके प्रकाशन-मुहूर्त्तपर मुझे बार-बार यह क्षण याद आ रहा है, जब मैं प्रयाग विश्वविद्यालयमें एम० ए० का पाठ्यक्रम था और युनिवर्सिटी रोडपर स्थित एक साधारणतम लॉज—प्रयाग पाथमके एक कमरेमें रह रहा था। हिन्दी-साहित्यके यशस्वी लेखक, परम गुरु मुहम्मद पुरुष और उस समय 'संगम' के सम्पादक श्री इलाचन्द्रजी जोशी तबसा सन्ध्या समय मेरे कमरेके सामने आ खड़े हुए, और अजब स्नेह-प्रधिकार और विश्वाससे बोले, 'देखिए लक्ष्मीनारायण लालजी, मुझे 'संगम' के लिए आपकी कहानी चाहिए—मुझे अपनी कहानी दीजिए'। सच, मैं अवाक् रह गया। कभी मैं जोशीजीको देखूँ, कभी अपने उस छोटे-से कमरेको, और तभी कुछ बोलना चाहूँ कि जोशीजी यह कहते हुए मुड़ने लगे कि 'अच्छा प्रणाम लालजी, आशा है आप दो-चार दिनोंमें मुझे अवश्य अपनी कहानी देंगे'।

बाहरे जोशीजीकी आशा, विश्वास और उनका आशीर्ष !

जोशीजी चले गये, पर जैसे अपने सँग वह मुझे भी बाँध ले गये : तबहज प्रेरणासे, आशीर्ष सूत्रसे !

और आज यह लिखते हुए मैं कितना प्रसन्न हूँ कि कहानी लिखनेकी यह सहज मानवीय प्रेरणा मुझे जोशीजीने दी और निश्चय ही उन्हींके आशीर्षादाने आज मुझे कहानीकार बना दिया।

पिछले वर्ष भारतीय ज्ञानपीठके सम्पादक-नियामक और मेरे मान्य मित्र श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैनने मेरी कहानियोंके संग्रहकी बात उठायी तो मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया। मेरे सामने मेरी १९४९ से लेकर १९५९ तककी कहानियाँ

विखर गयीं। 'संगम' से जो कहानीकी जय यात्रा जोशीजीने शुरू करायी थी वह 'हिन्दुस्तान साप्ताहिक', 'नवभारत विशेषांक', 'राष्ट्रवाणी', 'माया', 'सुप्रभात', 'उत्तरा', 'ज्ञानोदय', 'कल्पना', 'निकष' और 'कहानी' आदिमें होती हुई अविराम गतिसे आगे बढ़ रही थी। कहीं १९४९ और कहीं १९५९—हिन्दी कहानी लेखनमें ये दस वर्ष बहुत ही महत्वपूर्ण रहे हैं।

संग्रहमें किस कहानीको दूँ और किसे छोड़ दूँ—बड़े मोहमें फँस गया। पर उसी मोहने मुझे दूसरे ही क्षण वह तटस्थता दी कि मैंने उन सारी कहानियोंमेंसे केवल इतनी कहानियोंका यह संग्रह किया। संग्रहका यह नाम श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनका चुना हुआ है।

इस तरह इस प्रथम संग्रहमें मेरी कहानियोंकी गत दस वर्षोंकी यात्राके विविध चरण हैं, स्वभावतः जिनके अपने विशेष रंग और विशेष रसास्वाद हैं।

कृष्ण जन्माष्टमी
१९६०

—लक्ष्मीनारायण लाल

१५

अनुक्रम

सूने आँगन रस बरसे	९
विद्या दीदी	२८
सियार पूजा	४५
सूरजकुण्डकी हिरनी	६१
लोमड़ी	६६
द्रौपदी	७८
टूटता हुआ पुल	९५
सफ़ेद हाथी	१०८
घरके चूहे	१२०
वसन्त-प्रिया	१२७
वही चाँद और कंटे	१४६
तालाबका घाव	१६३
बबलू	१७९
सूर्यके लाल नयन	१९४

उँगलीमें जड़ाऊ सोनेकी अँगूठी पहनाते हुए बोली, “बड़ी भाग्यवान् है मेरी दुल्हन भाभी । किसी औरको क्या कुमार भइया-जैसा वर मिलेगा !”

विद्याने सिर उठाकर अपरिचिताको बहुत गंभीरतासे देखा, फिर बिना कुछ बोले वह आगे बढ़ने लगी—अपने कमरेमें । पर वह बहुतसे लोगोंके बीचमें धिरी थी—माँ-बाप, भाई, ताऊ, बाबा, जीजी-जीजा, ताई-दीदी, दूल्हेका भाई, बहन, और न जाने कितने लोग ! सबने मिलकर प्यारी विद्या बेटीके लिए सौभाग्यकी फुलवारी लगायी है, और सब मानो अपने प्रेम-जलसे उसे सींच रहे हैं, इसीलिए तो सब कह रहे हैं, प्यारी बिटिया, तेरा सुख-सौभाग्य अचल रहे ।

जल्दीसे जल्दी उस भीड़से अपने आपको अलग कर विद्याने उँगलीकी अँगूठी निकालकर अपने छोटे भाई कमलेशको देते हुए कहा, ‘माँको दे आ !’

कमलेश तेरह सालका था । विद्या जियाको उसने आजतक कभी रोते हुए नहीं देखा था । भरा हुआ वह माँके पास गया । अँगूठी देकर चुपचाप खड़ा रह गया । न उससे कुछ बोलते बना, न कुछ बताते बना ।

विद्या मँझली बहन थी । बड़ी बहनका नाम मालती था, उसकी शादी मुरादाबादमें हुई थी । अब वह दो बच्चोंकी माँ है । पति सेलटैक्स ऑफिस-में क्लर्क है ।

मालती जियाकी शादी विद्या विनोदिनी पास करते ही कर दी गयी थी । पक्का रंग और बदन खूब भरा-पूरा । गऊ-सा स्वभाव था । गुण-दंग-में जरा कम पड़ती थी । माताजीका स्वभाव, पता नहीं क्यों, तीनों बहनोंके लिए बड़ा उग्र था, विशेषकर बड़ी बहनके लिए । जब वह शादी करने लायक दीखने लगी, तब उसकी अवस्था पन्द्रह वर्षसे ज्यादाकी न थी । इसे माँ बहुत बड़ा दोष मानती थीं । कहती थीं, और हरदम ताने देती थीं कि

'भैसकी तरह बैठी खाती है, तो भी न गुण न ढंग, तब बदनमें चर्बी चढ़ेगी ही।' माँ जियासे बहुत काम लेती थीं।

मालतीके बाद है विद्या। शान्त और गम्भीर, रूपमें मालती जियाकी ही तरह, पर शरीरसे दुबली, भाव-प्रवण, गुण-ढंगमें सफल, पढ़ने-लिखनेमें हमेशा प्रथम, हाईस्कूलमें फ़र्स्ट, इण्टरमें फ़र्स्ट, बेहद भावुक, बेहद परिश्रमी! अतुल मानिनी। तीसरी बहन प्रभा। विद्यासे एक ही साल छोटी, पर सबसे अलग और अपूर्व, रंग थोड़ा गौर, आँखें सुन्दर चंचल, सबसे मुखर और निःसंकोच। घरमें उसीके नाते पाउडर और क्रीम आता था और चटक-मटकके कपड़े और नये-से-नये फ़ैशनकी बात उठती थी।

ऐसा हुआ कि, विद्या बी० ए० के प्रथम वर्षमें अकस्मात् फ़ेल हो गयी। दूसरे साल भी वह पास न हुई और प्रभा तबतक बी० ए० पास हो गयी। माँ-बापने विद्याको एकदमसे छोड़कर जैसे प्रभाको सिर-आँखोंमें उठा लिया। विद्या बी० ए० प्रथम वर्षके दिनोंमें जब कॉलिज जाती थी, उस समय उसका एक सहपाठी था रघुराज। एक दिन उसकी एक चिट्ठी, जो विद्याके नाम लिखी थी, प्रभाकी करामतसे माँके हाथ लग गयी। माँ विद्यासे पहलेसे ही नाराज थी। वस उतनेसे प्रमाणने सिद्ध कर दिया कि विद्या क्यों दो सालसे फ़ेल हो रही है। उस चिट्ठीको हाथमें लेकर उन्होंने छाती पीट-पीटकर भाषण दिया था—चरित्र क्या है? हमारे खानदानका कैसा गौरवपूर्ण इतिहास रहा है! अविवाहित लड़कियोंको कैसे रहना चाहिए, उनका खान-पान क्या हो, उनके स्वभाव क्या हों? इनपर हप्तों माताजीके व्याख्यान चले थे। वैसे वह इतनी उदार-हृदया भी निकलीं कि उस चिट्ठीको उन्होंने पिताजीके सामने भी रख दिया। पिताजी बहुत कम बोलते थे, जैसे सब कुछ अपने भीतर छिपा ले जाते थे। शायद इसी गम्भीरताके फलस्वरूप उस घरमें हर तीसरे वर्ष एक नन्हें-मुन्नेका स्वागत होता था। फलतः विद्याके आज छः भाई और तीन बहनें हैं।

संयोगवश विद्याका उस साल बी० ए० प्रथम वर्षमें फ़ेल हो जाना, अगले साल भी न उत्तीर्ण होना—इसने पूर्णतः सिद्ध कर दिया कि विद्या अब आगे नहीं पढ़ सकती। अब उसका जल्द-से-जल्द विवाह कर देना चाहिए।

मालती जियाकी शादी ढूँढ़नेमें पूरे दो वर्ष लगे थे। करीब ढाई हजार रुपये भी खर्च हुए थे। और तब बहुत मुश्किलसे जियाको हाईस्कूल पास पतिदेव मिल सके थे।

घरमें विद्याके ब्याहकी बात चलते ही, वह आग्रह करके मामाके संग कानपुर चली आयी। उसने अपने-आपमें निर्णय कर लिया कि वह कोई ट्रेनिंग लेगी—सी० टी०, बी० टी० अथवा नर्सकी ही ट्रेनिंग। पर विवाह न करेगी। उसका भी अपना व्यक्तित्व है, वह मौलिक और अद्वितीय है, इसे वह अवश्य प्रमाणित करेगी। प्रभा छोटी बहन है, और अब वह एम० ए० प्रथम वर्षमें पढ़ रही है। वह क्यों मुझसे इतनी ईर्ष्यालु है? मैं कॉलिज पैदल आती-जाती थी, अब वह रिक्शेमें कॉलिज आती-जाती है। कुमारी लड़कीको कैसे रहना चाहिए, उसे क्या पहनना चाहिए, कैसे उठना-बैठना चाहिए, माताजीके सदा उपदेश होते रहते थे। अब वह उपदेश-माला कहाँ है? प्रभा रेशमी वस्त्रोंमें कॉलिज जाती है, मैंने आजतक सदा इकलाई पहनी है। वही सीधा पल्ला, आँखें पृथ्वीमें गड़ाकर चलना, किसीको देखकर कभी मुसकराना नहीं, कभी कोई सनीमा नहीं, नृत्य-संगीत नहीं। आज तो प्रभा नैलोनकी साड़ी पहनकर पढ़ने जाती है। इतना सब 'मेक अप' करती है। माँ और पिताजी कितना मानते हैं उसे। उनके ऊपर जैसे वह शासन करती है। कितनी भाग्यवान् है वह! कोई कभी कुछ उसके खिलाफ़ नहीं कहता! कहेगा क्या कोई? उसकी ज़बान खींच ले वह! किस तरह तेज़ बोलती है प्रभा! कितनी इज़्जत है उसकी! पिताजी स्वयं उसके पीछे-पीछे कपड़ोंकी दुकानपर जाते हैं। घण्टों कपड़ोंका चुनाव होता है।

ठीक दस ही दिनों बाद मामाजीके नाम पिताजीका तार आया कि, विद्याको लेकर वह फ़ौरन ही घर चले आयें। विद्या बड़ी ममतामयी थी। घरसे मामाके साथ कानपुर आते समय छोटे भाई मुन्नूकी तबीयत कुछ खराब थी। विद्या मामाके नाम तार पाते ही चिन्तित और हैरान होने लगी कि, हाय! मुन्नू अच्छा हुआ कि नहीं, कैसे है वह! मुन्नू, चुन्नू, शिव, विलास, विजय और कमलेश—किसी-न-किसीकी तबीयत तो सदा खराब रहती है! किसीको लिवर ट्रबल तो किसीका पेट खराब; किसीको सर्दी खाँसी तो किसीको बुखार? तार हाथमें लिये हुए विद्या निर्णय करने लगी, वह सिर्फ नर्स ही बनेगी, अध्यापिका बनाना उसके लिए उतना सार्थक न होगा।

उसी शाम, गाड़ीपर बैठकर वह घरके लिए रवाना हो गयी। बार-बार उसके सामने भविष्यकी एक निराली छवि, उसका एक मौलिक व्यक्तित्व उजागर होता रहा। विद्या दीदी! सिस्टर! सदा सबकी दीदी! सफ़ेद सूती कपड़े, रोज बदले जानेवाले। सिरपर सेवाका घबल वस्त्र धर्म-ध्वजाकी भाँति! मुखपर पाउडर नहीं, ओठोंपर लिपिस्टिक नहीं। सदा नीचे देखते चलना सर्वसहा धरतीको, माको—सेवा और अनन्त धैर्यकी मूर्तिको।

सुबह होते-होते विद्या मामाके संग बरेली पहुँची। घरपर बहुत चहल-पहल थी। वह कुछ न समझी कि यह सब क्या होनेको है! थोड़ी देर बाद माँने बताया, शामको चार बजे उसकी गोद भरी जायेगी। विद्याको विश्वास न हुआ कि यह सब सत्य है। पर माँने गम्भीर मुख समझा दिया कि जो कुछ कहा जा रहा है, वह सब सत्य है। पिताजीने भी बता दिया कि उसकी शादी तय हो चुकी है। लड़का बी० ए० पास है। वहीं बरेली कालेजमें असिस्टेंट लाइब्रेरियन है। बहुत अच्छा लड़का है। बड़े भाग्यसे केवल तीन दिनोंमें ही शादी तै हो गयी है। सत्य कहा है किसीने

कि लड़कीकी शादी ईश्वरके कागज़में जहाँ लिखी होती है, वहाँ तै होते क्या देर लगती है!

विद्याके सामने सारी दीवारें जैसे काँपने लगीं। आँगन ऊपर उठ गया। तभी हँसती हुई प्रभा आयी। आज वह विशेष ढंगसे सजी-बजी थी, जिससे गोद भरनेवाले यह देख लें कि दुल्हनकी छोटी बहन कैसी है। उसके कपड़ों और बदनसे उड़ती हुई सुगन्ध इतनी तेज थी कि विद्याका सिर चकराने लगा। प्रभाकी हर बातमें विद्याको लगा कि उसका मज़ाक उड़ाया जा रहा है। जैसे उसको इस तरह जल्दी-जल्दीमें शादी तै करानेवाली वही उसकी बहन प्रभा ही हो! प्रभा मानो कोई मर्द हो, जो औरतको गुड़िया समझता है। जो हर क्वारी लड़कीको दयाकी भीख देता है। कभी उसका मोल-तोल करता है, कभी उसे इस तरह ठुकराकर चल देता है, जैसे वह किसी फैशनकी दुकानमें कोई चीज़ खरीदने गया हो, और नापसन्द आनेपर वापस लौट आया हो।

गोद भरनेकी रस्मको इतनी तेज़ीसे पूरा किया कि विद्या कुछ निर्णय ही न ले सकी। जैसे अनाथालयसे कोई लड़की पकड़कर लायी गयी हो, और लोगोंने जबरदस्ती उसकी गोद भर दी हो—विद्याको ऐसा ही लगा। वह दर्शककी भाँति जैसे उस निरीह लड़कीको दूरसे देखती हुई खड़ी रह गयी हो।

पर रात होते-होते विद्याको अनुभव हुआ कि गोद उसीकी भरी गयी है। वही वह अनाथालयकी लड़की है। तब विद्याने निर्णय लिया कि वह अब अन्न-जल नहीं ग्रहण करेगी। यदि माँ-बापने उसे गरीब और दयनीय बना दिया है, तो वह उसी कमरेमें अनशन करके अपना प्राण त्याग देगी। प्राण तो उसीका है न! वह जीवन उसीका है; उसे वह चाहे जो करेगी, किसीका क्या अधिकार!

रात बीती।

अगला सारा दिन बीता ।

लोग घबड़ाये । और न जाने क्या-क्या तर्क और व्याख्या करने लगे । सारे मुहल्ले भरमें चर्चा होने लगी कि विद्याने अन्न-जल त्याग दिया है । आज कलकी पढ़ी-लिखी लड़कियोंका दिमाग कैसा खराब हो गया है !

शारदा रघुराजकी बड़ी बहन थी, विधवा थी । गत दस वर्षोंसे वह बहन, भाईके ही संग रहती थी । दोनोंकी परस्पर अपार ममता और स्नेहके आगे लोग श्रद्धासे नत-मस्तक हो जाते थे । रघुराज अब वहीं एक कालेजमें अध्यापक हो गया था और अविवाहित रह गया था । शारदाने रघुराजके विवाहके लिए कितना आग्रह किया था, कितनी लड़ाइयाँ लड़ी थीं, पर वह जैसे अपने विवाहके पक्षमें ही नहीं था ।

शारदा बी० ए० एल० टी० थी, और स्थानीय गर्ल्स स्कूलमें ही अध्यापिका थी । उसने विद्याको हाई स्कूल तक पढ़ाया था ! विद्याको आज तक सबसे पहला और महत्त्वपूर्ण स्नेह शारदासे ही मिला था । उसी ममतामय सूत्रसे वह रघुराजसे परिचित हुई थी ।

विद्याकी यह दशा सुनकर शारदा उसके पास दौड़ी आयी—यद्यपि विद्याके माँ-बाप क्रतई नहीं चाहते कि उनके यहाँ शारदा और रघुराज कभी आयें ।

शारदाको देखते ही विद्याके साहस और संकल्पका बाँध टूट गया । वह शारदाके अंकमें मुँह छिपाकर रोने लगी ।

बगलके कमरेमें माँ विद्याके पिताजीसे लड़ती हुई कहने लगी, मुझसे पैदा हो कर मुझीसे लड़ती है । ऐसी चुप्पी लड़कीको तो जहर दे दें । इतनी हिम्मत उसकी ! उसकी जबान तो देखो, 'मैं शादी नहीं करूँगी, नहीं करूँगी ! शादी तै करनेके पहले मुझसे पूछा क्यों नहीं गया ?' मैं इन लड़कियोंकी सब हालत जानती हूँ । देखने हीमें यह इतनी सीधी है । रघुराजकी वह चिट्ठी अब भी मेरे पास है । उसीने मेरी लड़कीका दिमाग

खराब किया है ! वह परसों मुझसे बहस करने आया था कि "विद्याकी शादी इस तरह क्यों कर रहे हैं ? उसे बुलाइए । आखिर उससे भी राय लेनी चाहिए ! वह भी अपने होने वाले पतिके विषयमें निर्णय दे सकती है । उसका भी तो कुछ अधिकार है !" हूँ ! बहुत उपदेश मुझे देने आया था ! जी तो हुआ कि मुँह नोच लूँ !

विद्याने शारदाके अंकसे सिर उठाते हुए पूछा, "दीदी ! रघु परसों यहाँ आये थे ?"

"हाँ बहुत लड़ाई की उसने ! उसका बहुत अपमान भी किया इन लोगोंने !"

"उनका अपमान ?"

"खैर, उसे अपने मान-अपमानकी कोई चिन्ता नहीं है ! हाँ तुम्हारे लिए बहुत चिन्तित था । बार-बार कहता था कि विद्याका अपमान हो रहा है ! और कल तो वह बहुत ही विचलित था । मैंने उसे बहुत समझा-बुझा कर रोका !"

सहसा आँगनमें पिताजी बोलने लगे, "विद्या, मेरी लड़की, जो हमेशा फ्रस्ट आया करती थी, उसी रघुराजके सम्पर्कसे उसका सत्यानाश हुआ । पढ़ने-लिखनेसे जी चुराने लगी । और आज तभी हमारे विरोधमें अनशन और सत्याग्रह करनेकी उसकी इतनी हिम्मत हुई है ! मेरे घरमें किसीके आने-जानेकी कोई जरूरत नहीं है ! लोग ऊपरसे भलेमानुष देखते हैं ।"

विद्या लड़खड़ाकर आँगनकी ओर दौड़ी, और पिताजीके सामने अविचल खड़ी हो गयी, "आप लोगोंको बोलने भी नहीं आता ! आप लोग मेरा अपमान कीजिए, खूब कीजिए, दूसरोंने आपका क्या किया है ? पिताजी, आप कान खोलकर सुन लीजिए ! मेरे जीवनमें एकाएक जो असफलता आयी, उसकी जिम्मेदारी रघुपर क्रतई नहीं है ! उन्हें आप कुछ नहीं कह सकते ! शारदा और रघु मेरे पूज्य हैं ! मेरी असफलताके

जिम्मेदार आप लोग हैं ! आप, माँ, आप लोगोंकी लाडली बेटी प्रभा ! मैं तो अनाथ बेटी हूँ न !”

विद्याके ओंठ थर-थर काँप रहे थे, “निकालिए वह मेरे नाम रघुकी चिट्ठी ! निकालिए, नहीं तो मैं अभी प्राण दे दूँगी !”

विद्या जैसे पागल हो जायेंगी ! शारदाने दौड़कर उसे सम्हाल लिया और उसका माथा सहलाने लगी ।

माताजी वह चिट्ठी लेकर आयीं ।

विद्याने करुण स्वरमें कहा, “लाइए, आज मैं अपनी चिट्ठी तो पढ़ लूँ । मेरी चिट्ठी और मुझे ही कभी नहीं मिली ! देखूँ तो आखिर इसमें कितना पाप और कलंक है !”

विद्याने चिट्ठी ले ली और सबको सुनाकर पढ़ने लगी :

“मेरी प्रिय विद्या !

तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो । तुम्हारी गम्भीर आँखें, और उसमें एक अथाह गहराईसे मुझे एक अजब करुण गीत सुनायी पड़ता है—तुम अकेली हो ! तुम्हें कोई प्यार नहीं देता ! बहुत-बहुत प्यार चाहिए—मुझसे भी ज्यादा प्यार ! मुझे भी बहुत प्यार चाहिए ! मेरी शारदा जियासे मुझे बहुत प्यार मिलता है, फिर भी किसीका मैं और प्यार चाहता हूँ, जैसे तुम चाहती हो ! बताओ विद्या ! भला हमें क्या इतना प्यार कोई दे सकेगा ? शायद तुम मुझे दे सको, और मैं तुम्हें दे सकूँ ! इसके लिए हमें भगवान्से प्रार्थना करनी होगी, कि प्रभो ! तू हमें प्यारकी पात्रता दे ! सस्नेह;

—रघुराज ।”

चिट्ठी पढ़कर विद्या बहुत क्षणों तक अवाक् रही । उसकी दृष्टि चिट्ठीमें गड़ गयी थी, जैसे वह अपने अन्तर्मनमें इस अपूर्व, मौलिक प्रणय-गाथाको दुहरा रही हो और उसे समझती चली जा रही हो ।

“क्या है इस चिट्ठीका मतलब ! सबको सुनाकर पढ़ने चली है ! बेशर्म कहींकी !” पिताजी यह कहते हुए बरामदेकी ओर बढ़ने लगे ।

माताजीने बढ़कर विद्याके हाथसे चिट्ठी छीन लेनी चाही, पर विद्याने चिट्ठी देनेसे एकदम इन्कार कर दिया, “यह मेरी चिट्ठी है ! मैं अब इसे किसीको न दूँगी । किसीका इसपर क्या अधिकार ! इसका अर्थ तो आप लोगोंने लगा ही लिया है, अब क्या करेंगे ? माताजीने जैसे चिल्लाकर कहा, “देख लीजिए इसे, मुन्तूके पिताजी, मैं कहती थी न, रघुराजसे इसका प्रेम है ! कहाँ गये ? सुनिए, आकर देख लीजिए अपनी बेटीकी करनी ।”

पूरे घरमें जैसे तूफान खड़ा हो गया । प्रभाने कमरेमें तेजीसे आकर कहा, “शारदाजी, पिताजीकी आज्ञा है कि आप यहाँसे चली जायँ !”

शारदा जिया प्रभाको देखकर मुसकरा उठीं ।

विद्याने आवेशमें प्रभाका हाथ पकड़ लिया, “तुम कौन हो, इस तरह कहनेवाली ?”

“जी, मेरा नाम प्रभा जौहरी है । आई एम ग्लैड टू मीट यू ।” और अजब ढंगसे हँसकर वह चली गयी ।

विद्याने आहत दृष्टिसे शारदा दीदीको देखा, जो मान-अपमानसे ऊपर उठी हुई वत्सला माँकी तरह मुसकरा रही थीं ।

“दीदी ! आप मुझे कुछ आज्ञा दीजिए !” विद्याने शिशुवत् कहा ।

“मैं यह कहने आई थी कि तुमने अन्न-जल क्यों छोड़ रखा है ? इससे क्या होगा ? ऐसी भावुकतासे जीवनका यह विकट संघर्ष कभी नहीं जीता जा सकेगा ? लोग और मजाक उड़ायेंगे । अन्न-जल शरीरका धर्म है, इसे त्यागकर तुम कोई निर्णय नहीं ले सकतीं ।”

“मर तो सकती हूँ दीदी !”

“उससे क्या हो जायेगा ! किसको परवाह है तुम्हारे मरनेकी ! तुम जैसी असंख्य लड़कियाँ मर गयीं, क्या हुआ उससे ? मरना तो एक दिन अनिवार्य ही है, फिर उसके लिए इस कटु साधनकी क्या आवश्यकता !”

“विवाह भी तो शरीरका ही धर्म है दीदी !”

शारदा चुप थी। विद्या कहने लगी, “और मुझे इस शरीर-धर्ममें कोई विश्वास नहीं रहा। कोई ऐसी आवश्यकता भी नहीं महसूस करती कि उसके लिए कहीं बिक जाऊँ। मैं सुन्दरी भी नहीं हूँ। शरीरमें बहुत मांस भी नहीं है। और दीदी, सुनो, बहुत साफ़ बात है कि जब रघुके इस पवित्र पत्रको मेरे माँ-बाप नहीं माफ़ कर सके, इसे मेरे जीवनकी कुत्सित घटना मान बैठे, और मैं सदाके लिए उनकी नज़रसे गिर गयी तो फिर जिससे मेरी शादी होगी, वह पराया अपरिचित पुरुष भला क्या कभी मुझे माफ़ कर सकेगा—यह जानकर भी कि मैंने इस विवाहके विरोधमें अनशन किया था। जब बेटीके लिए माँ-बापका मन इतना छोटा हो सकता है, तब पतिके मनकी क्या कल्पना की जाय, जो वेचारा पहले तो केवल शरीर-धर्म ही होकर ही आता है। बोलो दीदी, क्या कहती हो तुम ? मुझे आज्ञा दो न।”

शारदाका कंठ भर आया। आँखें कहीं डूब गयीं। उसमेंसे तिरकर उसने वात्सल्यभरे स्वरमें कहा, “फिर भी तुम अपनेको मत मारो बेटी। लोग तुम्हें मारें, तुम भला अपनेको क्यों मारती हो ! जाओ कुछ अन्न-जल अवश्य कर लो !”

“अच्छा रूको दीदी, नहीं तो तुम सोचोगी कि.....।”

यह कहती हुई विद्या कमरेसे बाहर चली गयी। क्षण भर बाद एक कटोरीमें चार काली मिर्च और हाथमें एक गिलास पानी लेकर लौटी।

शारदा दीदीके समक्ष काली मिर्च मुँहमें डालकर पूरा गिलास पानी वह एक साँसमें पी गयी।

अग्निवाणकी तरह वह पानी पेटमें जाकर इस तरह लगा कि विद्या छटपटाकर रह गयी।

दरवाजेपर माँ आ खड़ी हुई, “मुझसे बताती तो मैं एक कप चाय न बना देती। इसकी हालत देखो, कितनी जिद्दी हो गयी है।” प्रभाने आकर

कहा, “यूनिवर्सिटी यूनियनके प्रेसीडेंटने जब अपना अनशन तोड़ा था, तब पहले उसे ‘ग्लुकोज’ दिया गया था, फिर मुसम्बीका रस।”

विद्याके सारे भाई प्रसन्नवदन कमरेमें आ खड़े थे और विद्या जियाको अपलक निहार रहे थे।

विद्याने अनशन तो अवश्य तोड़ा, पर साहसके साथ माँ-बापसे कह दिया कि वह विवाह न करेगी।

विद्याके विवाहका दिन निश्चित हो गया था, कुल बीस ही दिन शेष थे। आज-कलके जमानेमें इससे अच्छी शादी और कहाँ मिल सकती है ! कुल एक ही हजारमें शादीका निबटारा, और कमानेवाला दामाद। घर और खानदान कितना अच्छा है। लड़केका बड़ा भाई मुंसिफ है। पिता रामपुर नवाबके यहाँ मुंशी थे। लड़केका रंग कितना साफ़ है, कहाँ मिलते हैं सक्सेना लोगोंमें इतने सुन्दर, गम्भीर लड़के !

विद्याकी जिदसे ऊबकर एक दिन पिताजी रघुराजके पास गये। उससे बहुत देर तक बातें कीं। दूसरे दिन माताजीने शारदासे मिलकर बात की। पर कोई बात न बनी।

तीसरे दिन पिताजीने रघुराजको अपने घरमें बुलाया। आँगनमें विठाकर बहुत गंभीरतासे बोले, “सुनिए साहब, मैं बहुत इधर-उधरकी बातें अब सुनना नहीं पसन्द करता। न उतना मेरे पास वक्त ही है। सिर्फ़ दो बातें करनी हैं आपसे ! आप सिर्फ़ ‘हाँ-नहीं’ में उत्तर दीजिए, फजूल कुछ नहीं !”

“हाँ हाँ ! पूछिए दोनों बातें !” रघुराज बहुत गम्भीर हो आया था।

“आप विद्यासे शादी करेंगे ?”

“मैंने ऐसे प्रश्नकी आशा आपसे नहीं की थी। मैं इस तरह कोई उत्तर नहीं दे सकता आपको। आप अपनी बेटीका अपमान कर रहे हैं।”

“चुप रहो !” पिताजीने क्रोधसे डाँटते हुए कहा, “दूसरी बात सुनो, विद्यासे जाकर कहो कि उसकी जो शादी तै हुई है, उसे वह स्वीकार करे !”

“मैं उससे ऐसा कुछ नहीं कह सकता ! आखिर क्यों कहूँ मैं ?”

“तुम्हें कहना पड़ेगा !” पिताजीने दृढ़तासे कहा, “दोनों बातोंमें-से कोई एक बात करनी पड़ेगी तुम्हें ! तुम यँ यहाँसे जा नहीं सकते !”

“आपको क्या हो गया है ?”

“मुझे...मुझे... बताऊँ...बता दूँ !”

भीतरसे दौड़ी हुई विद्या निकली, उसने हाथ उठाकर कहा, “मुझे मञ्जूर है ! आपने जो मेरी शादी तै की है, वह मुझे स्वीकार है !...और कुछ ? पिताजी आपकी जो इच्छा हो, मैं उसके लिए प्रस्तुत हूँ। वरको बुलाइए। आज ही मेरी शादी करके अपने घरसे विदा कर दीजिए ! मैं इस घरमें कहीं किसी स्नेहके नामपर रुठी थी, सोचती थी, मैं बेटी हूँ आपकी ! कुछ तो दर्जा है मेरा ! पर हिंसाके सामने मेरा कैसा भाव ? मेरा भाव सदाके लिए भंग हो गया, पिताजी ! आज मुझे अपना सत्य मिल गया ! मैं बहुत कृतज्ञ हूँ !”

कुछ क्षण चुप रहकर विद्या आहत स्वरोंमें बोली, “अब तो पिताजी, आप रघुको बाहर जाने देंगे न !”

रघुके संग विद्या घरके वार निकल आयी। दोनों गम्भीर चुप थे। मर्मसे पीड़ित रघुको विदा देते हुए विद्याके मुखसे कुछ शब्द फूटने चाहे, पर अन्तर्मनमें ही वे घुमड़कर रह गये।

आज विद्या अपने पतिके घर है। दो साल हो गये हैं। पलंगपर लेटी है। क्वारके दिन हैं। नीले आकाशमें कहीं-कहीं वर्षान्तके बादल रुके हुए हैं। जब हवा तेज बहती है, तब बादल एक दूसरी सीमामें जा बहते हैं, नहीं तो स्वच्छ गगनमें सदा विश्राम करते हैं। विद्याकी तबीयत ठीक नहीं है—‘किडनी ट्रबल’ है उसे। आज तीन महीने हो गये, उसे पलंगपर पड़े। डाक्टर कहते हैं, बदनमें ‘फैट’ की कमी है। खूब खाना-पीना चाहिए।

पति दिन-रात डाक्टरके यहाँ दौड़ता रहता है। पर विद्यासे कुछ खाया-पिया ही नहीं जाता।

शारदा और रघुराज नित्य उसे देखने आते हैं। विद्या हँसकर कहती है, “आप लोग ज़रा भी परेशान न होइए ! मैं अभी मरूँगी नहीं। मैं अपनी छोटी बहन प्रभाकी शादी देखकर मरूँगी ! बड़ी साध है मुझे, उसकी शादी देखनेकी !”

पूरे एक सालकी दौड़-धूप, चुनाव, पसन्द और अनेक प्रयत्नोंके बाद प्रभाकी शादी तै हुई। लड़का लखनऊ मेडिकल कॉलेजमें हाउस सर्जन है। आठ हजार रुपये दहेजके लिए निश्चित हुआ है। गोद भरनेके मंगल मुहूर्त्तपर ‘एट होम’ दिया गया।

ज्यों-ज्यों प्रभाकी शादीके दिन नज़दीक आते जा रहे थे, विद्याकी तबीयत सुधरती गयी। पिताजीने विद्याको अपने यहाँ तबसे कितनी बार बुलाया है, पर वह अपना घर छोड़ वहाँ कभी नहीं गयी, और न कभी जायेगी ही। सिर्फ़ एक ही बार प्रभाकी शादीमें कुछ क्षणोंके ही लिए अवश्य जायेगी—अनाहूत-अनिमन्त्रित जाना पड़ा, तो भी।

प्रभाके ब्याहके दिन, विद्या सुबहसे ही अपूर्व ढंगसे प्रसन्न थी। कई वार अच्छेसे अच्छे कपड़े पहनकर अपने-आपको शीशेमें देखती रही। अन-जानेमें ही, किसी अव्यक्त शक्तने उसके मुखपर ‘मेकअप’ भी कर दिये। उसके मुखका वैराग्य आज राग-रंजित हो गया।

संगमें पति, रघुराज, और शारदा दीदीको लिये हुए वह पिताके दरवाजे पर आयी। सीधे घरमें जाकर पहले पितासे हाथ जोड़कर नमस्ते किया, फिर माताजीके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी, “कहा था न, प्रभाकी शादीमें आप लोगोंके दर्शन करने ज़रूर आऊँगी !” प्रसन्न वदन, विजयो-न्मत्त-सी वह प्रभाके पास गयी, स्वयं नमस्ते किया, और उसे रेशमी वस्त्रमें

वेष्टित श्रीमद्भागवतकी एक सुन्दर पोथी भेंट की, “प्रभारानी, मेरे अन्तर्मकी ओरसे तुम्हें शत-शत आशीष !”

विद्या बहुत तेज क्रदमोंसे सहसा मुड़ी। लोग देखते रहे, वह अजब वेगसे बाहर निकल गयी—जैसे हवाके झोंकेके संग अचानक कहींसे सुगन्धि आयी हो, और अपनी महक बिखेर गयी हो।

विद्या कुछ ही महीने बाद पुत्रवती हुई।

एक दिन उसे प्रभाका एक खत मिला। उसने लिखा था, “उसके पति इंग्लैण्ड जाना चाहते हैं। पति महोदय उसे विवश कर रहे हैं कि वह अपने पिताको पाँच हजार रुपयोंके लिए लिखे। उन्हें किसी भी तरह उतने रुपयोंकी सख्त जरूरत है।”

विद्या उस खतका क्या उत्तर दे, कुछ सोच नहीं पा रही थी, तबतक उसे प्रभाका दूसरा खत भी मिला। उसमें लिखा था, “पति महोदय मुझसे बहुत अप्रसन्न और असन्तुष्ट हैं। जिया, बताओ मैं क्या करूँ ! मेरे पिताजीका नाम ले-लेकर उल्टी-सीधी बातें किया करते हैं। मुझसे कहते हैं, ‘तुम्हारी उमर ज्यादा है ! यू हैव नो चार्म ! यू आर स्पेण्ट अप’ मेरा दुःख असह्य हो रहा है ! जियाजी, क्या तुम मुझे क्षमा कर सकती हो ? यदि कर सकती हो, तो तुम शीघ्र मेरे यहाँ आओ। हमारी गृहस्थी देखोगी तो पता चलेगा कि मैं आज क्या हूँ ! मेरा वर्तमान और भविष्य क्या है ?”

विद्या खत पढ़कर विचलित हो उठी।

उसने तत्काल प्रभाको उत्तर दिया। प्रभाका तार आया कि अभी मत आओ, पत्र भेज रही हूँ। पर प्रभाका तारके पीछे कोई पत्र न आया। विद्याने कई खत लिखे, जवाबी तार दिये, फिर भी कोई सूचना नहीं।

विद्या पतिके संग लखनऊ आयी। मेडिकल कॉलेजमें पता चला कि प्रभाके पति डॉ० सूर्यकान्त डॉ० मिस सरला मल्लिकके साथ मसूरी गये हैं। उनके निवास-स्थानका पता लगाकर विद्या उस घरके दरवाजेपर

पहुँची। घर भीतरसे बन्द था। बहुत आवाज देनेके बाद भीतरसे एक बुड्डी औरत निकली। विद्या जैसे-जैसे घरके अन्दर जाने लगी, उतना ही उसका मन डरसे काँपता रहा। गन्दा घर, बिखरी हुई चीजें और एक अजीब उदासी। कमरेमें पाँव रखते ही देखा—प्रभा पलंगपर औंधी पड़ी थी—बुखारमें बेहोश।

विद्याकी सेवा-शुश्रूषा, और क्षत-विक्षत प्रभा ! विद्या दीदी, सिस्टर। सिरपर सेवाका धवल वस्त्र !

“प्रभा मैंने कहा था न, मेरी बड़ी इच्छा थी, मैं नर्स बनूँगी—सिस्टर ! बोलो प्रभा, मैं अच्छी सिस्टर हूँ न !”

‘दीदी’ ! प्रभाके धवल अपांगमें कुछ बरसने लगा, “तुम सदा दीदी हो ! तुम मुझे अपने घर नहीं ले चलोगी क्या ?”

प्रभा श्रद्धानत विद्या दीदीके पतिको निहारने लगी, जिन्होंने गत सप्ताह भरमें जियाके संग उसकी कितनी सेवा की थी। विश्वास होता है, संसार कितना सुन्दर है, उसमें सुन्दर लोग भी हैं !

प्रभाको संग लिये जिया अपने घर चली आयी।

प्रभाने विद्याके पुत्रका नाम रखा, मनहर।

और जब वह उसे पुकारती थी तब एक शब्द उसके नामके पहले और जोड़ लेती थी—‘मेरा मनहर’।

एक दिन प्रभा मनहरको अपने अंकमें लिये बरामदेमें शिशुवत् सो गयी थी। विद्या पास आ बैठी और दोनोंको निहारने लगी—विद्या उन दोनों शिशुओंकी माँ है ! एक पुत्र, मनहर ! एक मेरी पुत्री, प्रभा !

प्रभाकी आँखोंके नीचे कितनी गहरी छाया आ गयी है ! विद्या देखती रही।

दूर कहीं बादल गरजा !

वायुमें सुगन्धि भर आयी।

विद्या कागज़ और कलम लेकर फिर वहीं आ बैठी और रघुको आज पत्र लिखने लगी :

'रघु तुमने आजसे कुछ वर्ष पूर्व मुझे एक पत्र लिखा था। वह पत्र आज भी मेरे सामने है ! वहीं मैं हूँ। बीचमें केवल वर्ष बीत गये हैं। लगता है, मैंने तुम्हारा पत्र पहली बार आज ही पढ़ा है, आज ही अभी तुम्हारा पत्र मिला है। उसके उत्तरमें 'मैं' नहीं हूँ, तुम्हीं 'तुम' हो—तुम्हारी गम्भीर आँखें और उसमें एक अथाह गहराईसे मुझे एक अजब करुण गीत सुनायी पड़ता है—तुम अकेले हो ! तुम्हें कोई प्यार नहीं देता। तुम्हें बहुत-बहुत प्यार चाहिए—मुझसे भी ज्यादा प्यार ! मुझे भी बहुत प्यार चाहिए—बताओ भला, हमें क्या कभी कोई इतना प्यार दे सकेगा ?'

सियार पूजा

विवाहके पाँचवें दिन, सुहागरातको, माँने सिवानमें जाकर प्रातःकाल सियार राजा और सिहिन रानीको रातके भोजनके लिए निमन्त्रण दिया। कनेरके पाँच पीले फूल मिट्टीके ढेलेके संग एक-एक कर फेंकते हुए माँने विनयके स्वरमें कहा—ओ सियार राजा, तुम्हारे पड़याँ लागों, सुनो मोर विनती, आज रात यहाँ चार घड़ी रात बीते अपनी रानी संग भोजन करने आइयो !

सन्ध्या समय मोर-विसर्जनकी तैयारी होने लगी। गाँवकी स्त्रियाँ दिन डूबनेके पहलेसे ही आँगनमें जमी बैठी थीं। पर अभी गीत शुरू नहीं हुआ था, कलपा बुआ अभी नहीं आयी थीं।

कलपा बुआ ! कलपा बुआ !

सबकी आँखोंमें बुआकी प्रतीक्षा थी। जैसे वही गीत थी, गाँव-भर उनका गायक था।

कलपा बुआ ! गाँव-भरकी बुआ थीं, बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, सब उन्हें बुआ ही कहते थे। और वह सबको नाम लेकर पुकारती थीं। नाम ही नहीं, सबको एक सिरेसे टुकारती भी थीं, और 'रे' भी जोड़ती थीं।

कलपा बुआकी अवस्था पचास वर्षसे कम न थी। पर अभी वह वृद्ध नहीं लगती थीं। मुँहमें सब दाँत थे। गोरे मुखपर झुरियाँ आ गयी थीं, पर आँखोंमें अब भी पूरी रोशनी थी। ओंठ सदा जैसे कुछ-न-कुछ गाते रहते थे। उनके जीवन्त स्वभावके पीछे सम्भवतः यह गीत ही वह प्राण-शक्ति थी, जो अजेय और मोहक थी। गाँव-भरके ऊपर बड़ा और पूज्य बनकर बैठ जाना, और सबसे समान रूपसे आदर-सम्मान पाना कोई साधारण बात न थी। पर बुआने सबको साधारण सिद्ध किया था।

बुआ जब बीस वर्षकी थीं, तभी विधवा हो गयी थीं। एक लड़की थी गोदमें पर उसी वर्ष वह भी बीत गयी। कलपा बुआ सरजू-पारसे तभी अपने इस नैहरके गाँव रामपुरामें चली आयी थीं।

बुआ सुफल बाबाकी बड़ी बहन थीं। वही सुफलासिंह, जो अपनी जवानीमें बायें हाथसे बन्दूक चलाते थे, और दायें हाथमें नंगी तलवार रखते थे। इधर लबलबीपर हाथ, उधर कन्धेसे सिर साफ़ ! उनकी यह बात लोगोंको अब तक याद है।

सुफलबाबाके घरमें अब वही दो नाती रह गये हैं, नेवाज और लोचई। नेवाजकी शादी हुई है, लोचई कुँआरे ही रह गये हैं।

नेवाजकी औरतका नाम बुआका ही रखा है, फुलगेंदवा। फुलगेंदवा जहँगीरगंज थानेसे बीस रुपयेमें खरीदकर लायी गयी थी। उस समय वह आठ वर्षकी थी, गेंदेके फूल-जैसी दमकती हुई छोरी, टुकुर-टुकुर देखने वाली, चंचल और फुदकनेवाली।

फुलगेंदवा अब पाँच बच्चोंकी माँ है। बड़ी लड़की सुभद्राका अभी पिछले वर्ष गौना हुआ है। दामाद अच्छा नहीं निकला। चोर-डाकुओंकी संगत करता है, गाँजा-ताड़ीका नशा करता है। सुभद्रा दो बार ससुरालसे

नैहर भाग आयी है। फुलगेंदवा बेटीका पक्ष लेकर नेवाजसे लड़ती रहती है। कलपा बुआकी हिम्मत नहीं पड़ती कि फुलगेंदवाके सामने जबान हिलायें। पूरे घरकी वही मालकिन है। जेसा चाहती है, वही होता है। हफ्तों नहाती नहीं। मुँहमें गाली भरे रहती है। जब चाहती है, तभी चूल्हा जलता है, नहीं तो घर-आँगनमें कुत्ते-बिल्ली रोते हैं। एक दिन गाँवमें बुआने किसीके घरपर इतना ही कह दिया कि, 'पुस्वा-पछुवा तू मोर भाय, फुहरी कै आँगन देव बुहार !' फुलगेंदवाका यह सुनना था कि उसने बुआकी एक भी न छोड़ी। जो-जो उसके मुँहमें आया, वह बखानती रही। दो दिनों तक घरमें चूल्हा न जला, यद्यपि अपने बच्चोंके लिए ठोकवा-पूरीका इस्तजाम वह चुपकेसे करती रही !

कलपा बुआ ससुरालसे यहाँ अपने संग एक भैंस लेकर आयी थीं। वही भैंस बुआके पतिकी एक स्मृति थी। उस भैंसकी तीसरी-पीढ़ी बुआके साथ थी, भैंस और पड़रू। घी बेंचकर बुआ तनपर कपड़े पहनती थीं। पड़रू बेंचकर सब रुपये कभी नेवाजको दे देती थीं, कभी लोचईके विवाहके लिए कहीं बाजी लगा देती थीं और कभी फुलगेंदवा और उसके बच्चोंके लिए दे देती थीं। गोरस और मट्टा सदा इतना होता था कि पूरा गाँव उनसे माँगता खाता रहता था। भैंस और पड़रूकी जितनी सेवा और उनसे जितना प्रेम वह करती थीं, उतना कोई अन्य स्त्री उस गाँवमें अपने पुत्रके लिए भी नहीं कर पाती थी।

आँगनसे धूप गायब हो गयी, पर कलपा बुआ अब तक गीत गाने न आयीं। सब उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बुआको लेकर स्त्रियोंमें बातें चल रही थीं।

—नेवाजकी भी आँख फूट गयी। मेहरीके आगे अब वह भी बुआको नहीं पूछता !

—आज चार दिनोंसे फुलगेंदवा घरमें महाभारत ठाने हुए है।

—बुआकी भैंस आजकल दूध नहीं देती, गाभिन है। इसके लिए झगड़ा ठना है कि भैंस बेंच दी जाय और उस रूपयेको दामादके ऊपर लगाया जाय। दामाद आजकल जेलमें है, उसे छुड़ानेके लिए ढाई-तीन सौ रूपये चाहिए।

—बुआ कितनी दुबली हो गयी है ! फुलगेंदवा खाने बिना मारे डालती है। कहती है, भैंसका दूध पियो जाकर, नहीं तो भैंस बेंचो। दामादसे बढ़कर इनकी भैंस है !

—बुआकी कमरमें माघ महीनेसे ही बयार पकड़े हुए है, बेचारी झुककर चलती है, लेकिन भतीजे और बहू-बच्चे हैं कि बुआको एक लोटा पानी उठाकर नहीं देते ! सब स्वार्थी हैं !

—लोचई बौड़म है। बुआ उसे जानती-मानती है, इसके लिए भी फुलगेंदवा ताने-बोली देती है !

आंगनमें औरतें इस तरह बातें कर ही रही थीं कि खिड़कीके द्वारसे कलपा बुआ प्रविष्ट हुई, शान्त, गम्भीर, सक्रेद-मोटी, बिना किनारेकी धोती पहने हुए, करीनेसे सिर और आँचल ढँके, दोनों कलाइयोंमें चाँदीकी दो-दो चूड़ियाँ पहने।

आते ही मुसकराकर बोलीं—क्यों रे, बैठल हइऊ तू लोग ? गीत-बाजा ना होई का ?

ढोलक लेकर बैठ गयीं और गीतोंकी अबाध धारा फूट पड़ी।

मौर-विसर्जनकी तैयारी हो गयी। जूनके प्रारम्भिक दिन थे। वर्षा नहीं हुई थी। बेहद गर्मी थी। सारे ताल-पोखरे सूखे पड़े थे।

मौर-विसर्जन एक सूखे पोखरमें करना पड़ा। कलपा बुआ पोखर तक न जा सकी थीं। एक तो कमरमें बयारका दर्द, दूसरे मेरी माँने बुआको साग्रह अपने पास बिठा लिया था।

माँने बुआके सामने एक कटोरेमें कुछ मिठाई और पेटे रखकर विनयसे

कहा—बुआजी, पानी पी लीजिए। वबुआकी शादी हो गयी, आपने कुछ नहीं खाया-पिया।

बुआ मुसकराकर रह गयीं। बोलीं—सुनो, दुलहिन, ब्याहका पिछाड़ा है। अभी बहुत नात-वाँत आयेंगे, मिठाई रखो। हमारे लिए भाव ही बहुत है !

माँ बुआजीको खूब समझती थी। बुआ किसीके घर कुछ खाती-पीती न थीं। कितना भी कोई आग्रह क्यों न करे, वह हँसकर रह जाती थीं, और उसे किसी-न-किसी क्रिसे-कहानी अथवा सोहर-गीतमें बहा ले जाती थीं।

माँने नयी दुलहिनको संकेत दिया। वह घूँघट निकाले आयी, और बुआके दोनों हाथ पकड़कर आग्रह करने लगी कि बुआ मिठाई अवश्य खायें। पर बुआ हँसती रहीं, केवल नयी दुलहिनका मान रखनेके लिए उन्होंने जरा-सा पेटा खाया, और एक सोहर सुनाने लगीं, हँधे कंठ और अश्रु-सिक्त मुखसे :

माँ जानकीने घरतीसे कहा

माँ मैं जनम-जनमकी प्यासी हूँ

मैं सागरके पास गयी

कदली बनमें गयी

और अब मैं राजा रामके पास नहीं जाऊँगी

उनसे मुझे भय लगता है

इतनी बात सुनते ही

घरती माँ हाथमें कलश लेकर प्रगट हुईं

और सीताको अपने अँकवारमें छुपाये

अन्तर्धान हो गयीं....

रसोई-घरमें चाचीजी और बड़ी बहन बैठी भोजन बना रही थीं।

उरदकी दाल, भात, रोटी, फुलौरी, कढ़ी, कटहल और आलू-परवलकी सब्जी ! सुगन्धके मारे सारा घर महमह महक रहा था ।

कलपा बुआने कहा—का रे दुलहनियाँ, का बन रहल बाय रे ?

चाचीजी और बड़ी बहनने कुछ कहना चाहा, तब तक कलपा बुआ बोली—दाल तो बस, भइया, धुली-उरदकी ! हींग और लौंग देकर खूब छौंकी और बधारी हुई । ऊपरसे कहीं जरा-सा अदरक मिल जाय, तो क्या कहने ! और भात तो तुलसीराम चावलका । खूब गर्म-गर्म, ऊपरसे थोड़ा-सा घी मसल दे, एक-एक चावल नगीना-जैसा खिल जाय ! उरदका बरा, मीठा भी और नमकीन भी । धोइया बहुत महीन न पीसे, बस हींग, जीरा, नमक, मिर्च डालकर जितना ही फेंटे, उतना ही बरा मुलायम और उसकी कढ़ी उतनी ही उसपर चढ़ती है । वह बरा क्या, जो बतासा-जैसा मुँहमें डालते ही न गल जाय ! और भइया, उरद-भातके संग बस दो ही तरकारी, कटहल मसालेदार और आलू-परवर रसेदार !

कलपा बुआ रसोई-घरके सामने मन्त्र-मुग्ध-सी रसमय वाणीमें एक-एक भोजनका बखान कर रही थीं, और बता रही थीं कि किस तरह उनकी ससुरालीमें उरद-भात और बरा बनता था । कैसे उनके सास-ससुर अच्छा भोजन बनानेके लिए उनकी सराहना करते थे । कहते थे, पारवाली-के हाथमें तो अमृत है । भोजन नहीं जेवनार बनाती है यह !

—और जो यह फुलगेंदवा है, फूहर कहींकी, इसे तो कोई शौक ही नहीं है । कभी कुछ नहीं बनाती । इसे तो आधा थरिया भात, आधा थरिया दाल, बस भैंसकी तरह खा लेगी और घोड़ा बेंचकर सो जायगी । खेतमें उरद पैदा होगा, चुपकेसे सब बेंच लेगी और रुपये गाँठकर बैठ जायगी । जड़हन पैदा होगा, तो बदलकर अरहरकी दाल लेगी और सोर-हिया लोगोंसे मछली खरीदेगी । न कभी अच्छा भोजन बनायगी, न बनाने देगी । ऊपरसे झगड़ा करेगी, तो पहले चूल्हमें ही पानी डालेगी ।

मौर-विसर्जन करके स्त्रियाँ गाती हुई बकनौरीके ताल पोखरसे गाँव आ रही थीं । कलपा बुआ आँगनमें ही खड़ी-खड़ी गीतकी स्वर-लहरीमें अपना सहज योग देने लगीं :

कील काँटा जड़ाव काँगहीमें
सोनेकी थारीमें जेवना परोसाँ
जेवना न जेबैं, ढकेल गड़हीमें...

मेरे ही बड़े भाईकी शादी थी । मैंने तब नवीं कक्षा पास की थी । ब्याहमें समागत अनेक रिश्तेदार-हित-सम्बन्धी घरसे बिदा हो गये थे । दो-तीन रिश्तेदार रह गये थे ।

मौर-विसर्जनके दिन सारे पट्टीदार भोजमें आमन्त्रित थे, साथ ही सब पौनी-प्रजाको भी भोजन मिलनेवाला था ।

मेरे संग घरपर मेरे मामाका लड़का रज्जू था । मेरी उसकी बड़ी दोस्ती थी । हम दोनोंको मौर-विसर्जनके उत्सवसे कोई विशेष दिलचस्पी न थी । हम दोनों व्याकुलतासे सियार-पूजाकी प्रतीक्षा कर रहे थे । माँ प्रातःकाल जबसे सियार राजा और उसकी रानीको रातके भोजनके लिए निमन्त्रण दे आयी थी, हम दोनों उसीके विषयमें हर क्षण बातें कर रहे थे । कमाल है, देखो न, कैसे माँके उस निमन्त्रणको सियार राजाने सुना होगा ! और सियार भी राजा ! माँकी भी कल्पना अजब है । सियार राजा अपनी रानीके संग भोजपर बिलकुल ठीक समयपर आयेंगे । भोजन करके वे वर-वधूको आज सुहागरातकी मंगल बेलामें आशीष देंगे । सियार जैसे ठाकुरजी हैं । रसोईसे सबसे पहला जेवनार, पहला पवित्र थाल उन्हींके लिए निकाला जायगा, उरद-भात, बरा, रोटी, सब्जी सब-कुछ । माँ स्नान करके, नया धुला वस्त्र पहनकर, माँगमें सुहाग-सिन्दूर भरकर सियार-पूजाके लिए भोजन ले जायगी । उसे और कोई नहीं छू सकता । कोई छू देगा अथवा वह पहला थाल न निकला होगा, तो सिहित रानी रूठ जायेंगी

और भोजनपर हाथ भी न लगायेंगी। फिर बड़ा गजब होगा, असगुन ऐसा होगा कि दूल्हा-दुल्हन जीवन-पर्यन्त परस्पर रूठे ही रह जायेंगे। दुल्हनका बनाया हुआ कोई भी भोजन दूल्हेको पसन्द न आयगा और न दूल्हेको कोई बात दुल्हनकी पसन्द न आयगी।

दो थाल पवित्र भोजन बाक्रायदा पुरइनके पात-पत्तलमें सजाकर माँ कलपा बुआ-समेत पाँच गाती हुई स्त्रियोंको सँग लेकर पूरबके सिवान चलीं।

मैं और रज्जू दोनों खड़े दूरसे देखते रहे। अँधियारी रात थी। पुरवैइया धीरे-धीरे भूमि लोटकर बह रही थी। कलपा बुआ माँके सँग सोहर गा रही थीं, शेष बुआके पीछे-पीछे गाती जा रही थीं। कितना करुण, मोहक था बुआका स्वर ! वह गा रही थीं :

कदम वृक्षकी छाँवमें
राधाकी सखियाँ सलाह कर रही हैं
गोकुलमें गोरस महँगा हो गया है
अब व्रज-वनिताएँ वहीं दधि बेचने जायेंगी
सब रे सखिन मिलि सल करे
श्रीहि रे कदम तर सखि
गोकुलामें गोरस महँग भइले
चलो दधि बेचन
एक बन गये
दुसर बन
तीसरे निकुञ्ज बन
अरे चौथेमें मिले कान्हा
तोरे मोर संख चूरी....

मैं और रज्जू बागके किनारेवाले आमके पेड़पर चढ़े हुए सियार-पूजामें आमन्त्रित सियार राजा और उसकी महारानीको देखना चाहते थे। वे

लोग किधरसे, किस भाँति, किस अदा और चालसे भोजनपर आयेंगे ? किस भाँति आज वे मानव-सरस व्यंजनका भोग लगायेंगे ?

हम दोनों धक्-धक् करते हुए दिलोंको संयमसे धामे हुए, डाल-से चिपके और छुपे हुए सम्मानित अतिथिके दर्शनके हेतु बैठे थे। हमें इसका भी आभास हो रहा था कि हम लोग कहीं कुछ अवैध कार्य कर रहे हैं। माँने बताया था, कि सियार-पूजा कोई न देखे, वहाँ कोई न जाय, सियार राजा रूठ जाते हैं, सिहिनी रानी शर्मा जाती हैं।

बहुत देर हो गयी, कहीं कोई सियार राजा नहीं दीख पड़ रहे थे। अकेलवा पेड़के पास कोंहरडिगवा बोल रहा था, हँसूहँसूहँसू ! दूरपर कहीं सियारोंकी समवेत वाणी सुनायी दी। हम आश्चर्यसे हुए कि सियारकी फ़ौज चल चुकी है। आखिर राजाकी सवारी है, मन्त्री लोग होंगे सँग। साथ अंगरक्षक होंगे। महारानी आज सियारोंके डोलपे चढ़कर आ रही होंगी। हम लोग एक बार परोसे हुए भोजनकी ओर देखते थे, दूसरी बार उस अज्ञात पथको, जिधरसे सियार दम्पतिका आगमन होगा।

सहसा ऊपर आसमानमें किसी नक्षत्रसे लम्बा तेज प्रकाश-पुंज टूटा। हम लोग उधर देखने लगे और अस्फुट स्वरमें बातें करने लगे कि किसी महापुरुषका स्वर्गवास हुआ, और उसकी पुण्य आत्मा स्वर्ग जा रही है। जितना अंश मायाका है, वह धरतीकी ओर खिंच रहा है, शेष स्वर्ग जा रहा है।

हम सहसा चौंके, फिर भय खाने लगे। सामने देखते क्या हैं कि कोई जीवधारी झुका हुआ धीरे-धीरे परोसे हुए भोजनकी ओर बढ़ रहा है। यह अकेला, बेढब-सा कौन है ? न पशु, न मानव, न जन्तु। पर यह जीव तो अवश्य शरीरधारी गतिमान् ! यह सियार नहीं है !

दूरसे सियारोंके बोलनेकी फिर आवाज आयी।
अरे ! वह सियार नहीं हैं ! वह तो सारा भोजन अकेले खाने लगा है। ओह, सियार-पूजाका क्या होगा ?

हे विघ्नविदारक ! हे पवनसुत !

यह कहकर हम दोनों डालसे नीचे कूद पड़े। सभय हमलोग दौड़नेको हुए कि वह जीवधारी हमसे असंख्यगुना अधिक भयभीत होकर भागने लगा, लड़खड़ाता हुआ।

आहत दीनताके आगे हममें अपूर्व वीरता जागी। हमने उसे खदेड़ लिया। जीवधारीकी साँस टूटने लगी। सामने अरहरकी खूंटियोंसे भरा हुआ खेत था, उसके ऊपर उसमें काँटे उगे थे। कुछ ही क्रदमोंमें हम छलाँग मारकर जीवधारीके पास पहुँच गये।

कौन है ?

हमारे सामने सहसा एक स्याह चेहरा कौंध गया, आह ! मेरी कलपा बुआ ! बुआ तुम ! हमारी बुआ !

मुझे लकवा मार गया। मैं आहत, इतना छोटा हो गया कि जैसे मैं मनुष्य नहीं छुरी था, जिससे आज अनजानमें गऊकी हत्या हो गयी। जिस बुआसे मैं आँख नहीं मिला पाता था, उस बुआको मैंने क्या कर डाला ?

रज्जू मुझसे साग्रह पूछ रहा था कि वह कौन था ? मैंने कटुतासे कहा, कोई नहीं ! कोई नहीं था तुमसे क्या मतलब ?

काँपते पैरोंसे मैं घर लौटा। सब लोग भोजन कर चुके थे। माँ हमारी प्रतीक्षा कर रही थी। मुझे देखते ही वह मुझे पकड़कर बोली—अरे, तू काँप क्यों रहा है ? तबीयत ठीक है न ? कहाँ घूमता है इतनी रात तक ! डर तो नहीं गया ?

मैं सदाः अभियोगीकी भाँति सिर हिला रहा था !

थोड़ी देरमें माँने आश्वस्त होकर कहा—देख मुन्नू ! मेरी बात सुन एक काम कर। मालूम हुआ है कि कलपा बुआ हैं न, उन्होंने आज चार दिनोंसे कुछ नहीं खाया है। तुझे वह बहुत मानती है। तू उनसे हाथ जोड़कर यहाँ भोजन करनेके लिए कहेगा न, तो वह जरूर मान जायेंगी ! जा बेटा, जल्दी बुला ला !

जैसे मुझे कोई आगे-पीछे दोनों ओरसे धक्का दे रहा था। मेरा अन्तस बँठा जा रहा था। बुआका वह स्याह चेहरा अब बहुत बड़े आकारमें मेरे सामने खिंचता जा रहा था। वह चेहरा जैसे अब बहुत तेज स्वरमें हँसने जा रहा हो ! उस चेहरेमें मन्द स्मित, श्वेतवसना वृद्धा बुआजी बैठी हैं, और मुझसे कह रही हैं, क्यों रे मनुआ ? तेरा बाप कहाँ है ? बोलता क्यों नहीं रे ? भूखा है क्या रे ? आ-आ-आ ! तूझे मोटी साड़ीकी दही खिलाऊँ !...

मैं अपने दरवाजेसे मुड़ा। अन्धकारमें आ खड़ा हुआ। मैं डर रहा था कि कहीं बुआ मुझे देख न लें। पर बुआ तो सर्वत्र व्याप्त थीं चारों ओर जैसे बुआ-ही-बुआ दिखायी दे रही थीं।

मैं वहीं अन्धकारसे लौटकर माँके पास आकर साधिकार बोला—माँ, कौन कहता है, बुआ चार दिनोंसे भूखी हैं ? फुलगोंदा काकीने बुआकी भैंस बेंच लेनेके लिए महाभारत छेड़ रखा है, ठीक है यह। यह भी सही है कि नेवाज पत्नीका मुँह देखता है, लोचई निर्बल है, और उस घरमें चूल्हा नहीं जल रहा है। लोग अपना-अपना पेट सत्तू, चिउरा, आम-इमली खाकर भर लेते हैं और फुलगोंदा अपने बच्चोंके लिए ठोकवा-पूरी छानकर रखे हुए है, यह सब सत्य है, पर यह भी परम सत्य है कि बुआ भूखी नहीं हैं। जो औरोंकी भूख मिटाता है, वह कैसे भूखा रह सकता है ?

दूसरे दिन सुबह-ही-सुबह गाँव-भरमें यह दुखद-करुण समाचार फैला कि कलपा बुआ गाँव छोड़कर अपनी भैंसके साथ सरजू पार ससुराल चली जा रही हैं, सिरसीसन्तपुर। बुआके दरवाजेपर स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे सब एकत्रित हो रहे थे। मैं दूर, एक पीपलके पेड़के किनारे अपनेको छुपाये हुए सब देख रहा था। बुआ अति व्यस्ततासे बाहर-भीतर दौड़ रही थीं। सब लोग बुआको मना रहे थे। कुछ बच्चे खड़े रो रहे थे। मुझे वह भी अधिकार नहीं था। काश, मैं भी बुआके पास क्षण-भरके लिए पहुँच पाता,

फिर उनके चरणोंमें झुककर एक बार कहता ओ बुआ ! ऐसा निर्णय मत लो ! कोई और दण्ड दे लो, पर यह महादण्ड नहीं !

अनेक लोग नेवाजको बुरा-भला कह रहे थे । स्त्रियाँ फुलगेंदाका जैसे मुँह नोच रही थीं ।

कलपा बुआ जानेको बिल्कुल तैयार हो गयीं । दौड़कर मेरी माँसे भेंट अँकवार देने लगीं तो फुलगेंदा बुआके पैरोंपर गिर पड़ी—बुआ, हमें छिमा करो ! हमें छोड़कर न जाव ! हमारा भूल-कसूर माफ करो !

कलपा बुआ फुलगेंदाको आश्वस्त करने लगीं—धीरज रखो, दुलहिन । किसीका कसूर नहीं । सब अन्न-जलकी बात है ! जब तक जहाँ जिसका अन्न-जल रहता है, तब तक न ! हम फिर आइव न ! फिर आइव !

नेवाज बुआके सामने हाथ जोड़कर चुप खड़ा रह गया । उसे कहनेको कोई शब्द ही नहीं मिल रहा था । सब कुछ कहना अप्रत्याशित, ऐसा अपूर्व था कि किसीको कुछ नहीं सूझ रहा था । सब लोग काँपकर देखते रह गये ।

गाँवमें एक सौ सालके बूढ़े थे, पितम्बर बाबा । लोग उन्हें उठाकर बुआके पास ले आये । और उन्हें अपने मुखसे बुआको रोकनेके लिए कहा गया ।

बुआने उत्तर दिया कि लड़कीकी जीवन-भूमि ससुराल है । नैहरमें तीस बरस कम नहीं रहे । आखिर ससुराल भी जाना चाहिए न ! वहाँ पतोह है, देवर-देवरानी हैं । उनके हाथका लगाया आमका एक बास है ।”

बुआके दृढ़ निश्चय और वैराग्यके सामने सारा गाँव सिर झुकाये निरुत्तर खड़ा रह गया । बुआ एक-एकसे मिलीं, और उस भीड़में बुआ अन्त समय कुछ खोजने लगीं । मेरा हृदय काँपा । बुआने मुझे छुपते हुए देख लिया । वह कड़े स्वरमें मुझे पुकारकर बोलीं—वहाँका छुपा है, रे गुरचन्ना कै पूत ? चल इधर !”

जैसे बुआने मुझे अपनी ओरसे मुक्ति दे दी, पर मैं आत्ममुक्त न हो सका । बँधे पैरों बुआके पास गया । आँखोंसे देख न सका । सिर झुकाये खड़ा रहा । बुआने मेरे माथेपर हाथ रखकर कहा—देख रे ! क्या मुँह बनाये हुए है ? रो नहीं । मैं फिर आऊँगी, रे ! खूब पढ़ना ! मेरे यहाँ आना !” अरे, कुछ बोलता क्यों नहीं, रे ? धीरज रखो, बेटा ! फिर भेंट होगी न !

बुआ मेरे पाससे मुड़ीं । मुझमें जैसे घने काले बादल उमड़ आये हों ।

बुआ भीड़ चीरकर आगे बढ़ीं, जैसे अयोध्यासे वनवासके लिए सीता निकली हों । बुआके संग उनकी भँस थी, साथ बाढ़ू चमार था, जो बुआको उनके गाँव सिरसीसन्तपुर तक छोड़ने जा रहा था ।

प्रायः पूरा गाँव बुआको सिवान तक छोड़ने गया । आधेसे अधिक लोग उन्हें मनोरामा नदीके घाट तक छोड़ने गये, और चार-छः लोग सरजू घाट तक भी गये । उन चार-छःमें मैं भी था । मैंने देखा था, बुआकी उस कर्णतम विदाईमें मेरा पूरा गाँव रोता रह गया था, और उन-सब आँसुओंका बोझ मेरे माथेपर उतरता गया था, पर वह बुआ जो गीतकी एक पंक्तिसे रोती थीं, उनकी आँखें जैसे पत्थरकी हो गयी थीं । कितने सुदृढ़ वैराग्यकी बाँधसे बुआने अपनेको रोका था ! ऊपरसे सबको धीरज बँधाती गभी थीं ।

करीब दो वर्ष बीतनेको आये, बुआके यहाँसे कोई आया-गया नहीं । वहाँ दो बार लोग गये थे, बताते थे, बुआ बहुत आनन्दसे हैं । सबको आशा लगी रहती थी कि बुआ एक बार यहाँ अवश्य आयेंगी ।

मुझमें बुआकी सुधि सुलगती रहती थी । जब मुझे सहसा बुआके सहज मुखकी याद होती थी, तब जलते तवेकी भाँति कोई चीज मुझे छू जाती थी । तब कई बार सोचता रह गया कि बुआको देखने उनके गाँव एक बार जाऊँ । पर क्यों जाऊँ ? उनकी शान्ति क्या भंग नहीं होगी ? मुझे देखकर उन्हें सुख मिलेगा क्या ?

दशहरेकी छुट्टियाँ थीं। एक दिन देखता क्या हूँ कि मेरे दरवाजेपर सिरसीसन्तपुरसे बुआका भेजा हुआ एक आदमी आया है, मुझे बुलाने।

मैं हतप्रभ रह गया। बुआने स्वयं मुझे क्यों बुलाया ?

बुआको तुरन्त देखनेके लिए मेरे भीतर अजीब व्याकुलता छा गयी।

आदमीको पीछे छोड़कर, मैं साइकिलसे पहला घाट सरयू पार होनेके लिए रवाना हो गया, और सन्ध्या होते-होते सिरसीसन्तपुर पहुँच गया।

दरवाजेपर खूँटेसे बँधी बुआकी भैंस देखकर मैं मुदित हो उठा। बड़ी-बड़ी मूँछ रखाये तीन लोग दरवाजेपर बैठे मिले। मेरे आनेकी सूचना भीतर गयी, और मैं एकटक दरवाजेकी ओर देखने लगा।

भीतरसे गुड़-दही आया। ताजी लाई आयी, पर अब तक बुआजीके दर्शन न हुए।

कुछ देर बाद सहसा देखा, बुआ हाथमें चिराग लिये भीतरसे आयीं और चौखटपर रखकर किवाड़की ओटमें खड़ी मुझे देखने लगीं। मैं उनके पास जानेके लिए दौड़ना चाहा, लेकिन बुआने हाथके संकेतसे मुझे रोक दिया।

मैं उन मूँछवाले परुषोंको देखने लगा, फिर देहरीके चिरागको, जो बुआका प्रतीक था।

चार घंटे रात बीतते-बीतते मेरी चारपाईके पास एक छोटी-सी लड़की आयी, और मुझे अपने संग अन्दर चलनेको कहने लगी।

मैं अन्दर गया, तो सामने ही मुझे बुआ मिल गयीं। मैंने चरण-स्पर्श किया। बुआ आनन्द-अभिभूत हो उठीं। बुआ मुझे अलग एक कमरेमें ले गयीं। मुझे पलंगपर बिठाकर, सामने लोहेकी एक पुरानी कुर्सी रख, उसपर भोजनसे सुसज्जित थाली रखी गयी। इतना भोजन, इतने प्रकार! पूरी, कचौड़ी, पापड़, तीन प्रकारकी सब्जी, खीर, दही, अँचार आदि और सबसे अमूल्य बुआका वात्सल्य! पंखा झलती हुई ममतामयी सामने बैठकर एक किनारेसे अन्त तक पूरे गाँवके बारेमें पूछ गयीं, एक-एक आदमी बूढ़े-बच्चे, स्त्री, सबको। फिर गाँवके पेड़ोंको याद करने लगीं। गड्डे-

नालों तकको न भूलें। झिमियाँके कितने पिल्ले जीवित हैं और मोतिया कुत्ता कैसे है... बुआ उस धरतीकी समूची व्यापकता सहित उसकी आत्माके एक-एक कणके विषयमें आत्मानुराग बिखेरती रहीं।

फिर अपने नये जीवनके विषयमें बताने लगीं—बेटा, मैं अच्छी तरह हूँ। सब बहुत मानते हैं। दो देवर हैं, उनके तीन जवान बेटे हैं, नाती है, पतोह हैं, घर भरा हुआ। अब यहाँसे छुट्टी नहीं देते। खाने-पीनेकी कोई कमी नहीं है। दूध-घी, अन्न-धन, किसी चीज़की कमी नहीं है। मुझे कोई काम नहीं करने देते। बड़ा घर है, ऊँचा ठकुराना, मेरा दर्जा यहाँ सबसे ऊपर है। मैं घरसे बाहर नहीं निकलती, मर्यादाकी बात है न !

दूसरे दिन बुआने मेरे लिए उरद, महीन खुशबूदार चावल, बरा, घी चुपड़ी रोटी, भिण्डी, आलू, परवरकी सब्जी, अँचार, चटनी आदि परोसा और आँचलसे पंखा झलती हुई कहने लगीं कि, मैं रामपुरा ज़रूर आऊँगी। वहाँके पेड़-पौधे तक नहीं भूलते। तुम अपनी शादीमें मुझे यहाँसे बुलाना। मेरे गीत अभी खत्म नहीं हुए हैं। कितने तो अभी ऐसे हैं कि जो अभी तक गाये ही नहीं गये हैं। मैं उन्हें गाऊँगी नहीं तो वे मुझे सराप नहीं देंगे ? वहाँ कुछ होता है न, तो मुझे यहाँ न जाने कैसे पता चल जाता है, फिर मैं यहींसे बैठी गा-रो लेती हूँ।

रातको मैं जल्दी सो गया। घरके भीतरसे कई बार कुछ लोगोंके बोलनेसे मेरी नींद खुली। बोलनेवालोंमें स्त्री-पुरुष दोनों थे, और मुझे ऐसा लगा कि उन आवाज़ोंके बीच कहीं बुआका भी क्षीण स्वर दबा हुआ है।

जैसे बुआ डाँटी जा रही थीं। बुआ रो रही थीं।

प्रातःकाल बुआकी भैंस बहुत जोरसे चिल्ला रही थी और खूँटेके चारों ओर छटपटाती हुई चक्कर काट रही थी। मूँछवालोंने भैंसको कई बार मारा, पर वह चुप न हुई।

बुआ मुझसे कुछ कहें, हँसे-बोलें, मुझे डाँटें, इसलिए मैंने उनके सामने सरलतासे कहा कि, बुआ आज मैं जाऊँगी।

बुआ चुप थीं ।

मैंने अपनी बात दुहरायी नहीं ।

बुआने शून्यमें देखते हुए एकाएक, अप्रत्याशित रूपसे कहा—अच्छा जाओ ! लेकिन देखना, इस बुआको न भूलना ।

और मेरे तैयार होनेसे पहले बुआ चादर ओढ़कर मुझे बिदा देनेके लिए स्वयं तैयार हो गयीं ।

बुआके संग मैं गाँवके बाहर आया । कोई बोझ मेरे हृदयपर बढ़ता जा रहा था । मैं चुप था । उदास । बुआ प्रसन्न थीं । सहसा मैंने देखा कि बुआकी भैंस खूँटा-पगहा-सहित सब-कुछ तोड़े हुए कुलाँचे मारती चली आ रही है । वह बुआके पास आकर सिर उठाये खड़ी हो गयी ।

मैं भैंसकी तरल आँखोंको देख रहा था ।

बुआ भैंसको सहलाती हुई मुझे देख रही थीं, और भैंस बुआको निहार रही थी ।

मैंने भरे कण्ठसे कहा—बुआ, मेरे संग चलो, मैं आजन्म तुम्हारी सेवा करूँगा !

बुआ हैंसीं । उनकी आँखें भरी हुई थीं । कहा—बेटा, आऊँगी, जरूर आऊँगी ! सबसे कह देना कि मैं जरूर आऊँगी । यहाँ सारा परिवार मुझे इतना मानता है कि आँखोंके सामनेसे हटने नहीं देता । प्रेमकी माया अजब होती है ! ऊँचा ठकुराना है, घरमें मैं ही सबसे बड़ी हूँ । कोई काम-काज मुझसे पूछे बिना कोई नहीं करता ! पर आऊँगी जरूर बेटा !

बुआके सामने अब अधिक देर खड़े रहनेकी हिम्मत मुझमें न थी । चरण-स्पर्श कर मैं आगे बढ़ा । मुड़कर देखनेकी भी हिम्मत न थी । एक ही क्षणमें मैं वहाँसे अदृश्य हो जाना चाहता था ।

दूर जाकर मैंने एक बार मुड़कर देखा, बुआ भैंसके गलेसे लिपटी हुई वहीं आमके वृक्षके नीचे खड़ी थीं ।

सूरजकुण्डकी हिरनी

आज इस तरह, इतने स्वरोमें ये कुत्ते क्यों भूँक रहे हैं ? दूर...दूरबहुत दूर...पास, बहुत पास...चारों ओर जैसे भूँकनेकी आवाज़ । अभी तो शाम है, और सब कुछ उदास है, जैसे सारी कुदरत थकी-थकी-सी लग रही है । पछिर्याँवका एक झोंका । एक झोंका और फिर, छोटा-सा अन्धड़ फिर पछिर्याँवका अनवरत साज-संगीत, मृदंग-मंजीरपर नन्हें-नन्हें हाथोंकी थाप ।

कोई पंख फड़फड़ाकर उड़ गया । कोई आँचल बाँधे, चुनरी समेटे ही सो गयो...सो गयी...। अभीसे सो गयी । पर ये कुत्ते क्यों इस तरह शोर कर रहे हैं ? कन-कनमें, पात-पातमें, वृक्षोंके मुकुटोंपर और तृणोंके अधरों-में यह अजब-सी खामोशी क्यों ऊँघ रही है ?

पूरनमासीका सहस्रदल कमल उगता चला जा रहा है...चाँदनीकी पंखुड़ियाँ सबको स्पर्श कर रही हैं । और यह थकनका पालना, खामोशी-

की डोर झूल-झूलकर सोनेवाली चैत पूर्णिमाकी श्वेत हिरनी, और झुलाने-वाला यह पछियाँवका हिरन, कंचन वर्णवाला हिरन, तीतरोंके रथपर चढ़ा हुआ, पपीहेके स्वरकी गति लिये हुए, बन-मयूरोकी बोल साथे हुए, महुएका मुकुट पहने, ऊखके फूलोंसे जामा-जोड़ा सजाये, गेहूँ-जौकी सूखी बालियोंकी ध्वजा लिये। हिरनीको नींद आ जाये, पछियाँवका हिरन बहुत धीरे-धीरे गा रहा है, झूमर, चौताल, पूर्वी और चढ़त मास बहु लागे रे निनियाँ, ननदो पल्लू तेरो पाँय, तेरे विरनको काली जुलुफिया, कहि दो विदेस न जाँय। और हिरनी प्रिया सो गयी। सो गयी पूनमकी राजकुमारी। पर पछियाँवका राज हिरन अब क्यों गा रहा है? अब शायद प्रियाको जगाना चाहता है। नहीं, तीतरोंवाला राजकुमार भी सो जाना चाहता है। फिर तीतरोंकी जोड़ियाँ गायेगी, किटी...किटी...किटीलों...किटीलों...किटीलों।

और आज इन गाँवोंमें इतना शोर क्यों बढ़ता जा रहा है? हर गाँवमें शादी-व्याह है क्या? हर डगर, हर पन्थ, परती, डहर, मेड़, पर ये इतने पायल क्यों बज रहे हैं? इतनी चूड़ियाँ, हार, बेंदी, बाली, बुन्दे, झाँझ, कड़े-छड़े, पैजनी, छागल, अनोखा छैलचूरी एक संग क्यों इस तरह बोल रहे हैं? यह काजलकी घटा, सतरंगी साड़ियोंका यह इन्द्रधनुष। पर यह तो चैतकी पूर्णिमा है, बैसाख तो आ रहा है, फिर जेठ तब असाढ़, और तब सावन...रतियाँ पड़ी सवनकी भीसी, सैयाँ संग खेस्यो पचीसी न।

पर आज तो चैत पूनम है। यह अनवरत शोर, वह दर्द, मजबूरी, वह संगीत, वह खामोशी आज धूलसे उठकर आकाशमें क्यों उड़ी जा रही है? तो आज हर मनकी बारात जा रही है।

दूल्हे-दुल्हनोकी पालकियाँ जा रही हैं।

सूरजकुण्डका मेला है आज।

अब समझा। यह शोर, यह गीतोंभरी पूर्णिमाकी हिरनी। इतने स्वर, इतने गीत! इतने आँसू!

उठ जाग, पूनमकी हिरनी, आज तू कितने गीत सुनेगी? सुन...सो नहीं, सुन...। मना कर दे रहा हूँ, मैं इस जंगलका राजा हूँ न। और तू रानी है, कुत्तोंका भूकना अब थम जायेगा। वह जो दूर, ऊखके खेतोंमें लोमड़ी बोल रही है न, वह भी चुप हो जायेगी। सुन, कितने गीत हैं, कितने बोल हैं...आँसुओंसे तर, आँखोंमें धुल जानेवाले, लाज-भरे, बाँकी चितवनवाले और निर्गुण...दर्दभरे...करुण स्वरवाले।

सरजूजीके तीर राजा हरिनवाँ मारें।

खेलत राम नेवारा, सरजूजीमें, खेलत राम नेवारा,

केथुग्रनकी प्रभु नाव बनी है, केथुग्रन लाग करुग्रारा...

चन्दनकी मोरी नाव बनी है...सोनवन लाग करुग्रारा...

सरजूजीमें खेलत राम नेवारा।

रात बढ़ती जा रही है। पछियाँव थमता जा रहा है। महुआरीमें महुए बरस रहे हैं। दूर...बहुत दूर कबरिस्तानके बागमें मुआ चिरई बोल रही है—खोदो...तोपो...मुआँ। और यह गजबकी चाँदनी, दूधकी धुली हुई, हंसोंके पंखपर चलती हुई रजत हिरनी। सुमेरा गड़हीपर कोहर डिगवाका जोड़ा जमा बैठा है और कैसे जमे लहजेमें हूँ...हूँ...हूँ...हूँ कर रहा है। उड़ जाओ कोहरडिगो। बहुत डर लग रहा है। मुआ चिरईको उड़ानेके लिए थालियाँ बजाओ। और जोरसे बजाओ। बड़ा अशुभ है, असगुन है।

भला अब कित्ती दूर है सरजूका मेला? वह सूरजकुण्ड। आधी रात बीत गयी न? महुआरीमें अभी पपिहरा बोला था। कोईयाँ तालकी वह क्रोंच जोड़ी, क्रौं-क्रों-क्रों-क्रों और मटियारकी टिटिहिरियाँ...टि...टि...टी...टी...टिटिटीटी।

और ये कितनी बैलगाड़ियाँ जा रही हैं...औरतोसे भरी हुई...गीतोसे ढकी हुई। दौड़ते हुए बैलोंकी घण्टियाँ, लीकमें बैलगाड़ियोंके चक्के, जैसे पिघलते बर्फमें पनचक्की चल रही हो। सब गाड़ियोंपर ओहार, और सबमें

गीत...कँहरवा, नकटा, गजल, चेइता, पूर्वी। पर इन औरतोंके बीचमें ये सैलानी मरद लोग क्यों इतने ऊँचे भरे स्वरमें इस तरह गाते हैं...आवेँ दे भ्रगहनवाँ, कटं दे जड़हनवाँ चिरई तुंहका लैइके ना, छइवँ डँडवापर मढ़ैया, चिरई तुंहका लैइके ना।

अरे, हवा तो बदल गयी। पश्चिमका हिरन, अब पूरवसे बहने लगा। पुरवैया चलने लगी, तो रातका पिछला पहर आ गया न। हाय, चुह-चुइया कितनी प्यारी बोल रही है। बड़ा लोहखरा लगते-लगते यह सब सूरजकुण्डके मेलेमें पहुँच जायेंगे...यह सारी बारात, यह सारा गीतों-भरा तूफ़ान, यह हुड़का जोड़ी बजाता हुआ कहारोंका काफ़िला चला जा रहा है। माझेके धोबियोंकी नाच चली जा रही है। कटोरा घन-घना रहा है। हाय राम! सबोंने गले तक पी रखी है, मोटी-मोटी रोटिया बनाइव बरेठिन कि भोरवे चलेके होई घाट रामा हो।

पर यह कौन इस तरह सिसककर रो रही है? अरे। प्राण निकाल देगी क्या? बन्द गाड़ीमें यह कैसी दुल्हन है? कहाँ जा रही है? यह बैलगाड़ी कैसी है? क्यों भाई गाड़ीवान, सूरजकुण्डके मेलेमें जा रहे हो न?

तुम भी चुप! कुछ नहीं बताओगे। बोलो, आखिर कहाँ जा रहे हो? तुम भी रो रहे हो? वह बेटी इस तरह क्यों रो रही है? घायल हिरनी... रोओ नहीं, धीरज धरो बेटी! राम-राम करो।...राम-राम करो बेटी।

घायल हिरनीके अंकमें अब केवल हिरनकी सुधि रह गयी। हिरनको बहेलियोंने मार लिया...आधे जमराज पलंग चढ़ि बँठे। इतने बड़े जंगलमें अकेली यह घायल हिरनी रह गयी। सरजूके तीर हिरनीकी चूड़ियाँ तोड़ी जायेंगी। माथेका सिन्दूर पोंछा जायेगा। राम-राम करो बेटी...राम-राम करो।

खँजड़ी बजाते हुए साधुओंका जत्था गा रहा है...

भवधू हो कुदरत खेल निराली।

उस पार किस भावमें औरतें गाती चली जा रही हैं।

और एक झुण्डमें बैठी हुई वे औरतें किस तरह गले मिल-मिलकर रो रही हैं, जैसे प्राण निकाल देंगी रोते-रोते।

लोमड़ीके बच्चे हैं। वही बच्चे, जो नाबदानके पिछवारे मकौइयाकी झालमें 'कीं कीं कीं' करते रहते थे।

मैदानसे झालमें ! झालसे नाबदानमें। और अब सत्यानाशियोंको देखो न, चौके तकमें मरने आ गये।

'लोमड़ीके बच्चे हैं ! आज माफ करो ! अगर फिर कभी आये तो उनका अच्छा न होगा। उनकी क्या मजाल !'

चौधरीने नाबदानकी मोरीके पास झुककर गन्दे नाबदानके गहन अन्धकारमें उन दुष्टों तथा अपराधियोंको देखनेका प्रयत्न किया। पहले तो चौधरीकी आँख चौंधिया गयी और नाबदानकी दुर्गन्धिसे चौधरीकी नाक सड़ गयी, और मन गुस्सेसे भर गया। चौधरीने देखा—नाबदानके अन्धकारमें छः आँखें जुगनूकी तरह चमक रही थीं।

चौधरीने बाहरसे ईटका एक टुकड़ा फेंका। बच्चे डरे हुए पीछे भगे। ईटका दूसरा देला... तीसरा और चौथा, बच्चे बेतरह घबड़ाये हुए चौधरीकी दृष्टिसे ओझल हो गये।

अब समुरे फिर कभी जो दिखाई पड़े यहाँ तो एक-एककी जान ले लूँगा, और जो इनकी महतारी हैं... रातको जो बहुत खों... खों... खों... खों करती हैं न, उनकी भी टाँग तुड़वा दूँगा। एक बार जहाँ मोतियाको 'लुहे' कहा कि उनका सारा कैची काटना भूल जायगा। मामूली कुत्ता थोड़े हैं मोतिया। बस जाओ आज माफ किया, अगर फिर यही हरकत हुई तो...'

●

मंगल चौधरीको कोई बाल-बच्चा न था।

एक दिन अयोध्याजीसे उसके गुरु बाबा आये। एक हफ्ते तक चौधरी और चौधराइनने गुरुजीसे रामायण-पाठ सुना। गुरुबाबाने चौधरीकी कुण्डली देखी। चौधराइनकी हस्तरेखाको सोचा-विचारा। गुरुबाबाके विदाईके क्षण

लोमड़ी

लोमड़ी है ? लोमड़ी...? लोमड़ीके बच्चे हैं !

मारो...मारो ! शैतान कहींके ! ये कहाँसे आ गये ? हिम्मत तो देखो इन कीड़ोंकी ! इन्हें ही नहीं, इनके माँ-बापको भी मारो। आदत छुड़ा दो !

मारो...मारो...मा...र ss ओ sss !

पत्ती चौधराइनने मारो-मारोका शोर करके मंगल चौधरीको दुपहरीमें बाहर सोतेसे जगा लिया। चौधरी दौड़कर आये, हाथमें लाठी लिये। भीतर बरामदेमें गुस्सेसे हाँफती हुई पत्ती पतिके सामने दहाड़ने लगी—भाग गये ! भाग गये इस नाबदानमें ! हाय, सारा चौका सत्यानाश कर दिया। छी: छी: छी: ! नाबदानके गन्दे कीचड़ चौधराइनके चौकेमें।

मंगल चौधरीने देखा, सारे चौकेमें, बरामदे और इधर-उधर कीचड़में सने, नन्हें-नन्हें गेंदाके फूल जैसे पाँवके छाप-ही-छाप दिखाई दे रहे थे।

जब चौधरी दम्पतिने बाबाका चरण-स्पर्श किया तब, उस समय गुरुबाबाने साफ-साफ बताया कि—बच्चा, तुम्हें यह घर नहीं पड़ रहा है। उत्तर दिशाका दरवाजा, पीछे सूनसान। किसी तरह यदि हो सके तो यह घर और जमीन बदल डालो, बच्चा! कहीं और इसी गाँवमें हो सके तो गाँवके बाहर, अपने किसी खेतमें ही कुटिया डालकर रह लो। बच्चा, भगवान् चाहेंगे तो यह जरूर फलेगा।

चौधरीके पास दूध, घन, लक्ष्मीकी कोई कमी न थी। उसने गाँवसे पश्चिम अपने खेतकी लम्बी-चौड़ी पट्टीमें अगले साल ही घर बनवा लिया और पुराना घर छोड़कर प्रसन्नतासे इसमें आ बसा।

चौधरीका यह नया घर अंग्रेजी खपरोंका था। मिट्टीकी दीवारोंमें पक्के नम्बरी ईंटोंकी कानिस लगी थी। दरवाजेका भाग सीमेण्टसे पक्का किया हुआ था, और उतने भागमें चूनेकी गहरी पोताईसे चौधरीका दरवाजा दग-दग कर रहा था। कुसमौर छावनीसे चौधरीका दरवाजा दिखाई पड़ता था—दो मीलकी दूरीसे। पर साधोपुर गाँवके छोकरे कितने बदमाश हैं…… और उनसे भी बदमाश हैं—भैंस-गोरूके वे चरवाहे, जो बे-मतलब चौधरीके चूनेकी इतनी सुन्दर दीवारपर कोयलेसे गोदते रहते हैं।

चौधरीने स्वयं दरवाजेपर अपने पण्डितसे यत्र-तत्र गेरूसे राम नाम, गायत्री मन्त्र, हरेकृष्ण, हरेराम, दुर्गा मन्त्र और काली मन्त्र आदि लिखवा लिया है।

दरवाजेसे दायीं ओर, चौधरीकी आठ बैलोंकी घारी। पास ही, आँखोंके सामने बैलोंकी पक्की चरनी। दायीं ओर चौधरीका घेरा—बाग-बगीचा, नीबू, अमरूदके बिरवे और केलेके पेड़—बीचमें साग-सब्जीकी उत्तम खेती। दरवाजेसे सटकर चौधरीकी दोनों गायोंके खूँटे और उनकी हौदियाँ। एक गायका नाम गंगा है—दूसरीका जमुना। पहली सफ़ेद है—दूसरी कुछ काले रोयेंकी। चौधरी प्रातःकाल खाटसे उठते ही पहले-पहल इन्हीं दोनों गजओंके दर्शन करता है।

दरवाजेके सामने पक्का कुआँ। कुएँके चारों ओर ऊँची फेंली हुई जगत जिसपर लोगोंको बैठनेमें आनन्द आता था। इससे परे चौधरीके बाबाके हाथका तैयार किया हुआ नवरंगा सुन्दर बाग, जिसमें आमके पेड़ोंके अलावा पीपल, महुआ, बरगद और गूलरके भी पेड़ थे।

चौधरीको आज इस नये मकानमें दस साल बीत गये, और यह घर मंगल चौधरीको परम मंगलमय और शुभदायक सिद्ध हुआ। इस नये घरके बनते ही तीसरे वर्ष चौधरीको एक दूसरी चौधराइन मिल गयी—फुलकल्ली। और दो ही वर्षोंमें फुलकल्लीकी गोदमें मंगल चौधरीका चाँद जैसा पूत किलकारियाँ मारने लगा।

धन्य है! इसे कहते हैं, भगवान्का प्रताप। गुरुमहाराजकी किरपा। ओ हो ओ! क्या कहा है किसीने—'भ्रंवरन मुरुज मनने, तबं गुरुबाबाकं पंडबं। मेरे गुरुबाबाके छोटे-छोटे गोड़वा, चरनन मां माथा नवैइवें, तबं गुरुबाबाके पंडबं।'।

फुलकल्ली आखिर पत्ती चौधराइनके नैहर कुरमीडीहाकी ही तो है! अहा हा, कैसा अंश है। गोड़ी-गोड़ीकी बात है बाबू! एक औरतकी गोड़ी ऐसी होती है कि जिस घरमें पाँव रखे, घर चौपट होकर रह जाय। फुलकल्लीको देखो न! कबसे बापके घर राँड़ बनी बैठी थी—कोई कहता था। फुलकल्लीके पाँवमें नागिन है, और कोई कहता था, इसके माथेपर दोनों भवोंके बीज भँवरी है। देखा न, गाँववालोंका परपञ्च! ऐसी सुन्दर और भाग्यवान् औरतको घरमें बन्द किये हुए थे न, पत्ती चौधराइनकी आँखकी बलिहारी है सब। हाय, कितना बड़ा दिल और दिमाग था चौधराइनका! उस साल नैहर गयीं। फुलकल्लीको एक रात गाँववालोंने कुएँमें कूदते हुए पकड़ा, फिर भाई-बन्धु उसे जहर देनेको सोचने लगे। पत्तीने उस शरीब-बेचारीकी भरी बाँह पकड़ ली। और खूब बाँह पकड़ीं। ऐसी कि जैसे रामने विभीषणकी बाँह पकड़ी थी। आज देखे कोई आकर कुरमीडीहाका आदमी—पता लगेगा कि उस औरतका कितना भाग्य है!

पत्नी उसे छोटी बहनकी तरह मानती है। फुलकल्ली चौधरीके घरकी लक्ष्मी है।

दूध-घन-लक्ष्मीके बीच फुलकल्लीने मंगल चौधरीको पूत भी दे दिया। धन्य हो पत्नी तुम। पहले तुम्हें ही लेकर मंगल अयोध्याजी गुरु बाबाके दर्शनके लिए जायेगा। तू तो साक्षात् ईश्वरका स्वरूप है रे पत्नी।

लोग बताते हैं पत्नीने कल्लीकी गोदमें पुत्र देखते ही पाँच रुपयेके पैसे लुटाये थे। बरहीमें कथिककी मण्डली नाचने आई थी। समूचे गाँवको पूड़ी-सोहारीकी पक्की दावत! दूर-दूरके ब्राह्मण, गरीब मुहताज भिखमंगे तीन दिनों तक बराबर खाते रहे और चौधरीके पूतको आशीश देते रहे।

धन्य चौधरी लेव अशीश,

बच्चा जीवें लाख वरीश।

चौधरीके द्वारपर सात दिनों तक अखण्ड हरिकीर्तन होता रहा। उप-रेहित बाबाने एक सौ एक रुपये, अपना पूरा वस्त्र और एक गऊ दान लेकर पुत्रका नामकरण किया—अयोध्याप्रसाद। और शुभमुहूर्तमें बच्चेकी कुण्डली बनायी।

इसी जेठकी पूर्णमासीको अयोध्याप्रसाद पूरे चार सालका हो जायगा। अभी कल तक वह अपनी दोनों माताओंकी गोदमें ऊधम मचा रहा था। अपनी दोनों माताओंसे खेल रचा रहा था। चौधरीके द्वारपर उसका यह पूत अपने सहज व्यक्तित्वका सौरभ लुटा रहा था। पर यह देखो, हाय! कल रातसे अकस्मात् उसे बुखार चढ़ आया है। कितना तेज बुखार है। हे अयोध्यापति भगवान्! फूल जैसे धेनुआँपर इतना तेज बुखार! हे काली माई! देवतन बाबा! पूतके माथेसे बुखार उतार लो। हमें दे दो ठाकुर जी! बच्चा कैसे सहेगा, इतना विकट ज्वर!

आज रात ज्वरका प्रकोप तो और भी बढ़ गया है। यह क्या है भगवान्! अयोध्यापति अपने गुलामपर कृपा करो ईश्वरनाथ!

चौधरी पूजापाठ-दवादर्पणके पीछे दिन-रात दौड़ रहा है। फुलकल्लीने सत्यनारायणकी कथाका संकल्प किया है। जोगी-वीर बाबाके थानपर तथा लंगडसाईके मजारपर पत्नी माथा टेककर उनकी पूजा मान आयी है। नौरंगामें पीपलके नीचे चौधरीने आज प्रातःकाल ब्रम्ह बाबाका हवन कराया है, और पूतकी कुशलताके लिए कुसमौरकी छावनीके नागा गोसाई और दुल्लेपुरके मजारके पीरके पाससे भभूत और तावीज मँगायी है। फिर भी, भगवानकी महिमा देखो, अयोध्याप्रसाद अब तक बुखारसे बेहोश पड़ा है।

चौधरी, पत्नी और फुलकल्ली बीमार बच्चेकी खाट पकड़े बैठे हुए हैं। फुलकल्लीके आँचलमें जैसे दूधकी बाढ़ आ गयी है। बेचारी वह अपने दूधके सागरको कहाँ ले जाय? उसका अगस्तमुनि तो इस तरह बीमार पड़ा है। चौधरीकी आँखोंमें चिन्ताकी लाली और परवशताके आँसू उमड़ते ही जा रहे थे।

आज ठीक पाँचवाँ दिन है। दोपहरका समय। पत्नी विचलित हो रही थी। उसने अयोध्याकी खाटके नीचे जमीनपर अपने आँचल पसारकर भीख माँगते हुए कहा—‘हे भगवान्! मेरे लालको अच्छा कर दो। चाहे इसके बदलेमें मुझे ले लो।’

मंगल चौधरीके कानोंमें पत्नीकी इस याचनाने जैसे गर्म सलाख डाल दिये हों। चौधरीने पत्नीको सम्भाला “घबड़ाती हो पत्नी! धीरज बाँधो। हमारा अयोध्याप्रसाद जरूर अच्छा हो जायेगा। हमने किसीका क्या बिगाड़ा है। सोचो तो! धीरज बाँधो। राम राम कहो! ईश्वर सब कुशल करेंगे। घबड़ाओ नहीं, हाँ! भगवान् सब मंगल करेंगे। वे दयासिन्धु हैं—पतित-पावन हैं।”

यह कहते-कहते मंगल चौधरी स्वयं आत्मकरुणा और भाव-विह्वलतासे विचलित हो उठा। वह वहाँसे उठा—दरवाजेपर आया और द्वारके नौकर-को चौधरीने आज्ञा दी ‘जाओ पुरोहित बाबाको तुरन्त बुला लाओ। उन्हें आजसे यहाँ दुर्गापाठ करना होगा। और हाँ, बभनगवाँसे हरदत्त पांडेको

भी बुला लाओ—उन्हें एक-एक लाख गायत्री और महामृत्युञ्जय मन्त्रका जाप करना होगा ।

नौकर उन्हें बुलाने भागकर गया । चौधरीमें कुछ साहस जागा और मन कुछ हल्का हुआ । चौधरी टहलता-टहलता नवरंगामें गया और वह मिट्टीके चबूतरेपर निःस्पन्द बैठ गया । धीरे-धीरे पछियाँव बह रहा था । और पीपल-बरगदके पत्ते हवामें संगीत उपस्थित कर रहे थे ।

जिस चबूतरेपर चौधरी बैठा था, उसे गाँवके चरवाहोंने बनाया था—खेलके लिए । एक राजा बनता था—जो इस चबूतरेपर बैठता है—और जिनमें झगड़ा हुआ रहता है वे नीचे खड़े होते हैं । राजा उनके मुकदमेको सुनता है । अभियोगीको न्याय देता है । चरवाहे उस मिट्टीके चबूतरेको राजा विक्रमादित्यका सिंहासन कहते थे ।

चौधरी उस चबूतरेपर मौन बैठा था । उसकी बाहुओंमें उसके बेहद थके, और पीड़ासे फटते हुए दोनों पैर सिकुड़े बँधे थे, और दायीं बाँहकी परिधिपर उसने अपने नुँहकी ठोड़ी टिका रखी थी । वह एक तरहसे मिट्टीके चबूतरेपर अपनेमें सिमटा हुआ गोल बना बैठा था और उसकी सूनी आँखोंमें कुछ जल रहा था ।

एक ही घण्टे बाद, पुरोहित पण्डित और हरदत्त पांडे दिखाई दिये । चौधरी दौड़कर उनके पैरोंपर गिर पड़ा—“भीख माँगता हूँ पण्डितजी ! अपने गुलामको बचा लीजिए, भगवान् !”

वातावरणमें पीपलके पत्तोंकी खड़खड़ाहट सहसा भर गयी ।

रातमें पछियाँव और तेज बहने लगा । पीपल और बरगदके पत्तोंके शब्द और तीखे हो गये थे । चौधरीके द्वारपर एक ओर व्यासगद्दी लगाकर पुरोहित जी दुर्गापाठ कर रहे थे, और दूसरी ओर पांडे जी महामृत्युञ्जय मन्त्रका जप कर रहे थे । सारे घरका वातावरण अत्यन्त भयावह लग रहा था—शान्त, चुप । अयोध्या खाटपर जैसे बेसुध पड़ा है । कभी-कभी पत्नी उसके मुँहको खोलकर एक घूँट पानी अथवा गायका दूध डाल देती

थी । पर बच्चेका कराहना उस क्षण देखा नहीं जाता था । खाटसे सटी फुलकल्ली पत्थरकी मूर्ति बन रही थी—जिसकी अपलक आँखें बच्चेपर टिकी हुई थीं । मंगल चौधरी कुछ दूरपर कम्बलके आसनपर जमा बैठा था । उसकी दोनों आँखें किसी गहन भावनामें बंद थीं, और ओठोंपर वह कुछ अस्फुट स्वरमें बुद-बुदा रहा था ।

उसका कौन-सा मन्त्र है ?

चौधरीकी विनतीमें सबसे अधिक बल है । उसने आजतक किसीका कुछ नहीं बिगाड़ा है । फिर भगवान् उसका क्योंकर बिगाड़ेंगे ? ईश्वर कृपासिंधु !

शरणागत दास !

चौधरी प्रणत, करबद्ध अयोध्यापति रामसे अयोध्याप्रसादके लिए भीख माँग रहा था ।

कमरेमें लालटेलकी रोशनी अत्यन्त धूमिल लग रही थी, और आँगनका गहन अन्धकार बड़ा भयावह लग रहा था । धूमिल रोशनी, आँगनके घने अँधकारके मेलसे जैसे वातावरणमें कोई अव्यक्त कराह फैला रहा हो ! और उस कराहके ऊपर दुर्गा और महामृत्युञ्जयके उच्चारित मंत्र ऐसे फैल रहे थे जैसे किसी बर्फकी नदीमें पहाड़की चोटियोंसे कितने भूत-प्रेत उतर रहे हों ।

चौधरी पीछे हटकर दीवारके सहारे आँखें मूँदकर बैठ गया । उसके ओठोंपर न विनयके शब्द थे, न आँखोंमें भगवान्की माया । जैसे, सब शून्य हो रहा था । कहीं आगे—पीछे कुछ नहीं ! कुछ नहीं !!

कुछ क्षणों बाद सहसा बेटेकी एक क्षीण कराह आयी—पत्तीने उसके मुखमें एक घूँट पानी डालना चाहा । बच्चेने मुँह बंद कर लिया ।

चौधरी रोना चाह रहा था क्योंकि उसके अंतस्में जैसे संसारका ताप उसे भस्म कर रहा था । जलते तबेकी भाँति उसका हृदय शायद रुदनके आँसुओंसे कुछ शीतल हो ! पर आज आँसुओंका कहीं पता नहीं है ।

सुनो करुणावाम
कवन भइल भूलिया ।
हम नहि जानो परभू नेतिया अनीतिया,
सुनो करुणानाय
कहाँ पायी भिखिया !

मंगल चौधरीकी आँखें कहीं शून्यमें फैलती जा रही थीं। उनमें अनुच्चरित शब्द उभर रहे थे और चौधरी उन्हें देख रहा था।

सहसा उन्हीं आँखोंमें चौधरीने देखा, कहीं दूरसे एक थकी हुई लोमड़ी धीरे-धीरे उसके पास चली आ रही है—चली आ रही है। और वह चौधरीके सामने उठकर उसे अपलक देखने लगी। लोमड़ीका मुँह खुला था, और वह बेतरह हाँफ रही थी। कुछ क्षण बाद लोमड़ी आदवस्त हुई—हाँफना बन्द किया। एक क्रम और आगे बढ़कर वह मंद-मंद हँसने लगी। चौधरी चुप था मूर्तिवत्। लोमड़ीने मूकवाणीमें कहना प्रारंभ किया—इतना रो रहे हो चौधरी ! बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रो रहे हो ? छी: छी: तुम इंसान होकर रो रहे हो ? याद करो न, तुम तो दयावान् आदमी हो, और हम घासके कीड़े हैं। तुमने यही तो कहा था ! याद है ? वे गर्मीके दिन थे। तब तुम अपने पुराने घरमें रहते थे ! याद करो ! हाँ, याद आ गया होगा ! जेठके दिन थे वे ! हाँ, यही दिन थे। दिन-रात लू चल रही थी। मैदानमें कहीं हरियाली न थी। खेत सूनसान थे। जिस खेतमें मेरी माँद थी, वह कैसी जमीन थी ! गर्मीके कारण वह विशेषकर दिनमें तबेकी भाँति जलने लगती थी। उन्हीं दिनों मैं तीन बच्चोंकी माँ हुई। मेरे बच्चे वहाँ बहुत ही कष्टमें थे—मुझे कहीं आश्रय न था। मैं किसी और जगहकी तलाशमें घूमती रही—भटकती फिरी। आखिर मैंने तुम्हारे घरका पिछवाड़ा देखा। पिछवाड़ेकी घनी झाड़ी और उसमें मेरे बच्चोंकी सुरक्षा। इससे भी आगे तुम्हारे घरके आँगनसे पिछवाड़े बहने-वाला नाबदान—वह गन्दी नाली मेरे बच्चोंके सुआश्रयके लिए काफ़ी थी।

मैं उसी रातको अपने तीनों बच्चोंको वहाँ उस माँदसे लिवा लायी, और वहाँ तुम्हारी दया और शरणमें मैंने उन्हें छोड़ दिया।

दिनकी तेज़ गर्मी और लूममें मेरे बच्चे कीचड़ और बदबूसे भरी हुई नालीमें रहते थे, और रातभर वे मेरे साथ मैदानकी उसी माँदमें रहते थे।

मेरे बच्चे दो-दो महीनेके हुए। खूब खेलने और फुदकने लगे। उन्हें इतना खुश देखकर मेरा सीना फूल आता था। भोरमें बच्चोंको वहाँ छोड़कर जब मैं उनसे विदा लेने लगती थी, तब उन्हें निश्चय ही समझा देती थी 'मेरे मासूम बच्चो ! इसी नालीमें ही शान्तिसे पड़े रहना। कहीं मालिक चौधरीके आँगनमें न चले जाना। भक्त वैष्णव आदमी हैं ! कहीं घर जूठा या गन्दा हुआ तो उन्हें अच्छा न लगेगा।' पर वे तो बच्चे ही थे। उन्हें कहाँ इतना विवेक और चिन्ता ? तुम लोग दुपहरीमें जब बाहर कमरोंमें सो जाते थे, तब मेरे नादान-बच्चे उसी नालीमेंसे निकलकर तुम्हारे पवित्र आँगनमें आने लगे। चौकेमें, बर्तनोंमें कीचड़-भरे पैर और मुँह डालने लगे। मैं बच्चोंको उनके ऐसा करनेपर बहुत ही डाँटती थी—उन्हें बार-बार समझाती थी। पर वे बच्चे ही थे। वे बचपनेसे क्योंकर बाज आते ? फिर एक दिन ऐसा हुआ, तुम्हें तो याद ही होगा चौधरी, तुम, तुम्हारी चौधराइन, तुम्हारा हलवाहा—ये तीनों दुपहरीमें छिपकर मेरे बच्चोंकी सब हरकतें देखने लगे। फिर क्या हुआ ? कितनी कष्ट घटना है वह ? तुमने चौधरी, अपने नौकरकी सहायतासे, उसी भरी दुपहरीमें नालीके ही अन्दर मेरे तीनों मासूम बच्चोंको मरवा डाला। इसके बाद क्या हुआ चौधरी, शायद तुम्हें नहीं मालूम, कि उस शामको जब मैं तुम्हारे घरके पिछवाड़े आयी, और बच्चोंको पुकारने लगी—नालीमें घुसी। वहाँ खूनके लोथड़े कीचड़में सने थे। मैं बाहर भागी। चारों ओर सनसन। पर मैं भागती रही पूरे मैदानमें रो-रोकर बच्चोंको पुकारती रही। सूने मैदानने मुझसे कहा, कि लोमड़ी, तेरे बच्चे मर गये ! ठीक है ! पर मैं क्या करूँ !

मैं तो आज तक उन्हीं बच्चोंको ढूँढ़ रही हूँ। मेरी माँद मुझे बोलियाँ सुनाती है कि देख ली न इन्सानकी दया.....उसकी छाया। अब रोती रह जिन्दगी भर। इन्सानके लिए वह क्या घटना है। कीड़े तो मरा ही करते हैं। उसमें कौन ऐसी बड़ी विशेष बात है। तू जिन्दगी भर रोती रह। इन्सान समझेगा कि कीड़े बोल रहे हैं। या लोमड़ी अपनी माँद भूल गयी है।

चौधरीकी आँखोंसे बराबर आँसुओंकी एक धारा बहती जा रही थी। लोमड़ी चौधरीकी ओर थोड़ा और खिसक आयी और वह निश्चेष्ट हो अपलक चौधरीकी बन्द आँखोंकी देखने लगी—ओ चौधरी? सुनो.....मुझे देखो? मेरे तीन बच्चे थे। तुम्हारा तो एक है। तुम मानते हो, मेरे बच्चोंमें तुम्हारे बच्चेसे बहुत फ़र्क है? ठीक है! पर जीव तो वे भी थे न! क्यों? नहीं थे क्या वे? देखो, मैं उनकी गरीब माँ हूँ। तुम्हें मानना होगा चौधरी, वे तीन अबोध आत्माएँ थीं। उनसे उनके शरीर सहसा मानव विश्वासघातसे नष्ट कर दिये गये। इसीलिए वे तीनों आत्माएँ एकीकृत हो इस सूने मैदानके सीनेपर हमेशा दौड़ती रहती हैं, और मैं उनके पीछे भागती रहती हूँ। हे चौधरी! यह केवल मेरा शरीर है, जो तुम्हारे सामने बैठा है। वस्तुतः मेरी आत्मा उन्हींके पीछे सदा दौड़ रही है।

मेरे तो तीन थे।

तुम्हारे तो केवल एक ही है!

यह कहकर लोमड़िने चौधरीका दायाँ हाथ सूँघना चाहा, चौधरी डरके मारे चीख उठा, 'लोमड़ी!'

पत्नी और फुलकल्ली दोनों घबड़ा गयीं—'क्या है! क्या हुआ?'

चौधरीने फूलती हुई साँसोंके बीच कहा, 'इस कमरेमें अभी एक लोमड़ी आयी थी; तुम लोगोंने उसे नहीं देखा? बाहरका दरवाजा खुला है क्या? नहीं—नहीं! बाहरका दरवाजा तो बन्द है! यहाँ इस समय लोमड़ी कैसे

टूटता हुआ पुल

“मैं तुझसे कुछ कह रहा हूँ हरी; मेरी बात तो सुन, चल, लौट चल, उठ, और मेरे पीछे चले आ! मैं तुझीसे कह रहा हूँ। मैं तेरा बाप भी हूँ और मनुष्य भी। चलकर लीलाको फिरसे देख, मेरे सामने देख! लीला तुम्हारी पत्नी है और तुम उसके पति हो, और बीचमें मैं हूँ। मैं तुम दोनोंके बीचमें हूँ, एक टूटते हुए पुलकी तरह। लीला अब मेरी बेटीकी तरह है, अगर तुम मेरे दामनसे होकर उसे अपने अंकसे लगा लोगे, तो यह टूटता हुआ पुल बच जाएगा, नहीं तो टूट जाएगा। सच मानो बेटा, टूट जाएगा, क्योंकि मैं एक ढाँचा हूँ, इमारत नहीं। इमारत तुम हो। और लीला इमारतकी छाया है। इमारत और छायाके बीचमें मैं टूटता हुआ पुल हूँ। लीलाको पहली ही नज़र देखकर घृणासे तू इतनी दूर भाग आया। तू कहता है, वह काली है। चल, फिरसे देख, उठ, मैं कह रहा हूँ हरी! चल, इस टूटते हुए पुलको बचा ले; नहीं तो.....”

“नहीं तो क्या होगा ?” हरी आवेशमें एकाएक चीख उठा। उसके हाथकी सिगरेट दूर जा गिरी। उसने घबराकर अपने चारों ओर देखा। वहाँ कोई नहीं था; और वह उठकर बहुत तेजीसे अकेले कमरेमें चक्कर काटने लगा। फिर धीरे-धीरे उसकी चाल धीमी पड़ती गयी। पिताजी उसके आठ ही महीने बाद मर गये; यही तो हुआ। “और बदसूरत लीला ! वे मुझे अपनी इमारत कहते थे और लीलाको मेरी छाया कहते थे। ठीक ही कहते थे, छायामें कालिमा होती है और लीला काली भी है। लीला छाया है और मैं मनुष्य हूँ। फिर मनुष्य छायासे कैसे क्या करे ? उससे क्या सम्बन्ध जोड़े ? छायामें कहीं कोई अपना व्यक्तित्व होता है ? सत्ताहीन लीलाको लेकर मैं क्या करूँ ? लेकिन लीला अभी जिन्दा है ! लोग कहते हैं, वह खुश है, स्वस्थ है। वह लोगोंसे कहती है कि वह मरेगी नहीं। वह इसी तरह जिन्दा रहेगी। वह झूठ कहती है। लेकिन फिर वह मरी क्यों नहीं ? एक वर्ष हो गया ! इमारतका कारीगर तो आठ ही महीने बाद मर गया ! और इमारतकी वह बदसूरत छाया ! वह छाया ! वह सत्ताहीन, व्यक्तित्वहीन लीला ! वह इमारतकी छाया !”

दिन भर इसी तरह लीलाकी छाया हरीके सामने डोलती रही। वह उसकी छायासे भी घृणा करता था। लेकिन घृणामें कितनी तीव्रता होती है, इसे हरी अनुभव कर रहा था। वह दिन भर जहाँ-तहाँ डोलता रहा, जहाँ-जहाँ वह गया, आफिस, बाज़ार, काफ़ी-हाउस, सिनेमा और मित्रोंमें, लीला न जाने कैसे उसके सामने-सामने चलती रही। उस लम्बी छायाकी भाँति, जो सुबह-शाम मनुष्यके आमने-सामने चलती रहती है। हरी दिल्लीके सेक्रेटरीयटमें है और लीला उससे सैकड़ों मील दूर अपने घर है—हरीके गाँवमें। कितना अन्तर, कितना लम्बा व्यवधान और कितने दूर हैं दोनों—घृणा और प्यारसे भी दूर। लेकिन आज सत्ताहीन लीला न सही, लेकिन उसकी छाया हरीके सामने है। वह कोई प्रश्न नहीं करती, उसे कोई उल-

हना नहीं, कोई आक्रोश या घृणा नहीं, वह बस चुप, निश्चेष्ट, निस्पन्द हरीके सामने खड़ी है।

हरीको बार-बार उसपर क्रोध आता है। वह झुंझलाकर आवेशमें उठ खड़ा होता है और इच्छा-शक्तिमें बढ़कर लीलाके मुँहपर बहुत जोरका थप्पड़ मारता है। लीला वैसे ही खड़ी रहती है। वह बढ़कर उसे बहुत जोरका धक्का देता है; लेकिन वह गिरती नहीं। हरी फिर उसके लम्बे-लम्बे खुले बालोंको पकड़ लेता है और उसे खींचता हुआ बहुत दूर कर आता है, लेकिन वह फिर वहाँ खड़ी मिलती है; जहाँसे वह घसीटी गयी थी।

उस शामको हरी बेहद हैरान था। उस दिन पहली तारीख थी और उसे तीन सौकी तनख्वाह मिली थी। वह पूरे दिन इधर-उधर दौड़ता रहा, ताकि लीलाकी बदसूरत छायासे उसे छूटकारा मिल जाए; लेकिन उसे सफलता नहीं मिल रही थी। वह परेशान, उस शामको घर लौटा। नौकरने चाय तैयार कर रखी थी, लेकिन उसे चाय पीनेकी इच्छा नहीं हो रही थी।

शामके सात बज रहे थे। हरीने अपने कपड़े बदले और वह पैदल कनाँट प्लेसकी ओर बढ़ने लगा। चलते-चलते उसे लगा कि लीलाकी छाया सामनेसे हट गयी है। न जाने कहाँ खो गयी ! वह बहुत हल्का हो गया और धीरे-धीरे उसकी चालमें रोजवाली मस्ती आ गयी।

वह फुटपाथसे चल रहा था और उसका भीतरी व्यक्ति खुशी और गर्वसे चिल्लाता हुआ कह रहा था, “मैं दो विषयोंमें एम० ए० हूँ—अंग्रेज़ी और इतिहासमें। मैं दो बार आई० ए० एस० की परीक्षामें बैठ चुका हूँ। कितनी अच्छी-अच्छी लड़कियोंसे मेरे सम्बन्ध थे। कितने अच्छे-अच्छे परिवारोंसे मेरी शादीके प्रस्ताव आ रहे थे, लेकिन पिताजीके प्रति श्रद्धा, आदरकी भावना, पितृव्यकी मान्यताओंने मेरा गला घोट दिया। पिताजी अंग्रेज़ी स्कूलके मास्टर ही तो थे—पक्के हिन्दू-सनातनधर्मी !

उन्होंने कैसे मुझे फँसाया ! लीलाका फोटो उन्होंने दिखाया था। लेकिन फोटोमें शत-प्रतिशत काली लड़कियाँ गोरी लगती हैं। फिर मेरा क्या दोष ? मैं अपनी जगहपर हूँ। मेरा स्तर, मेरा दृष्टिकोण, मेरी मान्यताएँ अपनी हैं। इसीके अनुरूप मुझे पत्नी चाहिए—छाया नहीं। भावुक और कमजोर पति छायासे प्रेम कर सकता है; विवेकी और उद्बुद्ध पति नहीं। मैं उन आदमियोंमें नहीं कि अकारण जीवन-भर एक जिन्दा लाशको अपने कन्धोंपर रखे हुए घूमता फिहूँ। मेरे विकासका रास्ता अलग है; और मेरी अवस्था ही क्या है—छब्बीस वर्ष ही का तो हूँ। मुझे कौन कह सकता है कि मैं विवाहित हूँ ? मेरे रास्तेको कौन रोक सकता है ? लीला ! लीला ! !...क्या था उस मनहूसमें ? वह आइनेमें अपना चेहरा तो देखे, फिर मेरी पत्नी बननेका दावा करे। बदशक्ल; बोलने-उठने-बैठने और पहननेकी जिसे तमीज नहीं। विद्याविनोदिनीकी शिक्षा ! क्या बला है यह विद्याविनोदिनी ? कुछ नहीं ! मैं लीलाके पिता बाबू वंशीधरको साफ़-साफ़ लिख चुका हूँ कि वे अपनी एकलौती बेटीको मेरे घरसे वापस ले जाएँ और खुशीसे उसकी दूसरी शादी कर लें। वह अभी कुमारी है। मैंने तो उसे पहली नजरसे बस देखा ही है और मेरा मन भर गया है। कुमारी लीला अपने बापके घर जाए; उसे कुछ नहीं मिलेगा, मेरे दरवाजेपर सत्याग्रह करनेसे। जा, चली जा, भाग यहाँसे.....”

फुटपाथपर चलते-चलते, लीला फिर एक बार हरीके सामने खड़ी हो गयी और अपने सत्ताहीन व्यक्तित्वमें निस्पन्द रूपसे कहने लगी “हरी, मैं तेरे दरवाजेसे कहीं और नहीं जाऊँगी ! क्यों जाऊँ ? कहाँ जाऊँ ! मैं कुमारी हूँ; लेकिन विवाहिता तो हूँ। तेरी तरह मैं कैसे कहूँ कि मैं अविवाहिता हूँ ! मैं किस समाजसे कहूँ ? तेरा समाज, तेरी मान्यताएँ कुछ और हैं, मेरी कुछ और ! मेरी माँगकी लाली तो अब किसी तरह नहीं धोयी जा सकेगी। मुझे तो सब पहचान लेंगे कि यह लड़की विवाहिता है। फिर मेरे कौमार्यका मूल्य ही क्या ?”

यह कहकर लीलाकी छाया हरीके सामनेसे फिर अदृश्य हो गयी। हरी कनाट प्लेस पहुँच गया और प्रतिमाके फ्लैटमें जा घुसा। प्रतिमाको कहीं बाहरसे आये हुए अभी कुछ ही देर हुई थी और वह स्नानके बाद, नये रूपमें हो रही थी।

हरी प्रतिमाके लम्बे-चौड़े ड्राइंग रूममें बैठा था। वह मुसकराता हुआ सिगरेट पी रहा था और दूसरे कमरेमें गाती हुई प्रतिमाके व्यक्तित्वको वह उसके संगीतमें देख रहा था। कितनी अच्छी है प्रतिमा ! कितना जीवन है इसमें ! प्रतिमा, जीवन-संगिनी, प्रेमिका प्रतिमा, मित्र प्रतिमा, सब कुछ इसमें एकीकृत है।

थोड़ी देरमें प्रतिमा सामने आयी और दोनों एक दूसरेको देखते ही रह गये। प्रतिमाको याद था कि आज पहली तारीख है। वह हरीके पर्समें उसकी पूरी तनख्वाह देख रही थी। हरीको याद था कि आज उसकी मनःस्थिति विगड़ी है; उसकी चित्त-वृत्ति अशान्त है और प्रतिमाका सम्पर्क, उसका सामीप्य, उसका पियानो, उसका संगीत, उसका सौन्दर्य इसकी अचूक ओषधि है !

प्रतिमा पियानो बजाने लगी। हरी संगीत सुनने लगा। प्रतिमा गाने लगी और हरीको न जाने क्या हो गया ! वह देखने लगा, ड्राइंग रूमके दाहिने कोनेमें लीलाकी छाया। लीला सिर झुकाये बैठी है। उसके माथेका घूँघट धरती छू रहा है। कमरेमें मद्धिम-मद्धिम प्रकाश है। लीला निश्चेष्ट बैठी है। सुहाग-रात है। लीला सौन्दर्यके भारसे झुकी है। वह घूँघटके नीचे केवल धरतीको इसलिए देख रही है कि वह भी उसी धरतीकी बेटो है। जवान धरती और जवान रात। लीलाकी नाकमें सोनेकी नथ है। माँगमें सिंदूर है और उसके माथेपर झूलती हुई सुहाग-बेदी है। आँखोंमें अथाह लज्जा और संकोच है; होठोंपर सहज मुसकान और विश्वासका गर्व है। हरी धीरे-धीरे उसके पास गया और सामने खड़ा हो गया। लीला लज्जाके भारसे और झुक गयी, क्योंकि उसे विश्वास था कि हरीके हाथोंमें

बेला और चमेलीके हार होंगे और वह अब उसे पहनाएगा, उसे मनाएगा। लेकिन हरीके बायें हाथमें जलती हुई सिगरेट थी और बायें हाथमें लीलाका वह फोटो, जिसे देखकर उसने शादी की थी। हरीने कहा, “घूँघट हटाओ !” लीला और सिमट गयी। उसे लगा कि वह विनोद कर रहा है, सता रहा है। लेकिन हरीने झुककर उसके घूँघटको हटा दिया और लीलाको देखकर वह सिहर गया। उसे लगा कि उसके पैरके नीचेकी धरती डोल गयी।

पियानोके सामनेवाला हरी भी काँप गया था और वह अपनी कम-जोरी—अन्तर्द्वन्द्वको प्रतिमासे छिपानेके लिए उसे इस तरह भीतर ही भीतर पीनेका प्रयत्न कर रहा था, जैसे कोई छोटा-सा साँप एक बड़े मेढकको निगलनेकी कोशिशमें लगा हो।

प्रतिमाने पियानो बन्द करके हरीसे कहा, “आज तुम परेशान लग रहे हो हरी, चलो कहीं घूम आयें। तुम्हारा मूड कुछ गिरा-गिरा-सा है; चलो कोई पिकचर ही देख आयें। मुझसे नाराज हो गये हो क्या, हरी? बोलो, डियर !”

हरीके पास इस प्रश्नका उत्तर नहीं था; इसलिए वह झपटा हुआ मुसकराता रहा। वह उस शामको अपूर्व ढंगसे निष्क्रिय हो रहा था, इसी-पर प्रतिमा बार-बार आश्चर्य कर रही थी। हरीने आप्रह किया और प्रतिमा फिर पियानो बजाने लगी। लेकिन दूसरे ही क्षण ड्राइंग-रूमके बायें कोनेमें, हरीके पिताजी आकर खड़े हो गये। हाथमें छड़ी, आँखोंपर चश्मा, चेहरेपर झुर्रियाँ और माथेपर आशा और विश्वासकी रेखाएँ। हरी सबको छोड़कर दिल्ली भाग रहा है, और पिताजी उसे मना रहे हैं : “लीला तेरी पत्नी है और तू उसका पति है, और बीचमें मैं हूँ। मुझे दण्ड दे, बेटा ! मेरी यातना कर ले, लेकिन मेरी लज्जा और मेरी नाक रख ले ! लीला मेरी बेटीकी तरह है। अगर तू मेरे दामनसे होकर उसे अपने अंकसे लगा लेगा, तो यह दूटता हुआ पुल बच जायेगा, नहीं तो दूट जायेगा।” लेकिन

हरी सबकी उपेक्षा करके बहुत तेजीसे भाग रहा है और पिताजी……“इस दूटते हुए पुलको बचा ले नहीं तो……नहीं तो……”

हरी सिहर कर खड़ा हो गया और बढ़कर प्रतिमाके समीप चला गया। प्रतिमा भी खड़ी हो गयी और उसने अपनी बाहुओंका सहारा दिया। दोनों धीरे-धीरे फ्लैटके बाहर हो गये।

हरी सो रहा था। काली रात; बेहद तेज वर्षा और तूफान बढ़ता जा रहा है। गाँव डूबते जा रहे हैं। घर उजड़ते जा रहे हैं। गाँवसे शहरके बीच एक छोटी-सी नदी है; वह इस तूफानमें भयंकर हो गयी है। उसमें अपूर्व बाढ़ आ गयी है। इसका दूटता हुआ पुल ही एकमात्र साधन है, जिससे होकर गाँवके लोग शहरमें शरण ले सकते हैं। भयंकर तूफानमें मनुष्योंका काफ़िला इस दूटते हुए पुलसे नदीको पार करनेवाला था। काफ़िलेके लोग छोटे-छोटे दुकड़ोंमें पुलसे आगे बढ़े। लोग जब पुलके बीचमें पहुँचते हैं, पुल वहीं दूट जाता है और मनुष्योंकी टोली नदीकी भयंकर बाढ़में खो जाती है, तब पुल फिर जुड़ जाता है। इस तरह मनुष्योंका पूरा काफ़िला नदीमें बह जाता है। धीरे-धीरे तूफान रुक जाता है। आकाशमें चाँद निखर आता है और पुलके किनारे एक जवान लड़की आती है। वह पुलसे आगे बढ़ती है—गाँवसे शहरकी ओर। इस बार विश्वासघाती पुल पहलेसे ही दूटा रहता है। लेकिन लड़कीके पाँव बढ़ते जा रहे हैं। दूटा हुआ पुल चिल्ला रहा था, “आगे न बढ़ना ! मैं बीचसे दूटा हूँ। मेरा पेट भर गया है। मैंने मनुष्यके एक पूरे काफ़िलेको खाया है। ओ लड़की ! आगे न बढ़ना, मैं बीचसे दूटा हुआ पुल हूँ।” लेकिन ज्यों-ज्यों लड़कीके पाँव बढ़ते गये, नीचेसे दूटा हुआ पुल जुड़ता गया। लड़की उस पार पहुँच गयी और उसने घूमकर एक बार फिर दूटते हुए पुलको देखा। पुल बीचसे दूट चुका था और उससे आवाज आ रही थी, “तू मेरी बेटी है ! मैं दूटता हुआ पुल हूँ : तुझे हमेशा इसी तरह डूबनेसे बचाता रहूँगा। जा, मेरी बेटी।

लड़की शहरमें आती है। पूरा शहर सो रहा था। लड़की अपने

बिछड़े हुए पतिके बँगलेमें घुसती है और वह अपने पतिके सामने खड़ी हो जाती है।

“चल भाग यहाँसे।” पतिने घृणासे ललकारा।

लड़की हँस पड़ी, “मैं तुझे चुनौती देने आयी हूँ। ध्यानसे सुन, जितनी तीव्रता तेरी घृणामें है, उतनी ही तीव्रता मेरी भूखमें भी है। तू अपनी भूख मिटानेमें स्वतन्त्र है; क्योंकि तू पुरुष है। प्रकृतिकी ओरसे तुझे एक विशेष अधिकार मिला है कि तू कभी माँ नहीं बन सकता। तुझपर कोई कलंकका धब्बा नहीं लग सकता। इसीलिए तुझे पता नहीं है कि मेरी भूखमें कितनी तीव्रता है; क्योंकि कभी तू भूखा नहीं रहा है। इसीलिए मेरे पति, तेरी घृणा सफल सिद्ध होती चली आ रही है। लेकिन मैं तुझसे क्यों नहीं घृणा कर पा रही हूँ, क्योंकि मैं भूखी हूँ और परम्परासे आती हुई मान्यताओंसे जकड़ी हुई हूँ। लेकिन अब मैंने तय कर लिया है, और इसे मैं तुझे आखिरी बार सुनानेके लिए इतनी दूरसे यहाँ आयी हूँ। मैं अभी इसी रातको गाँव लौट जाऊँगी और पड़ोसमें एक नौजवानका हाथ पकड़ लूँगी। प्रकृतिकी जीत होगी। समाज मुझसे पूछेगा और हम दोनोंसे प्रकृति पूछेगी। बस यही कहना था।”

पुरुष लड़कीको पकड़नेके लिए पीछा करने लगा। लड़की बहुत तेजीसे भागने लगी, पुरुष उसका पीछा करने लगा। लड़की हँसती हुई भाग रही थी, पुरुष उसे रोकनेके लिए चिल्लाता हुआ भाग रहा था। लड़की दूटे हुए पुलपर आयी और वह क्षण भरमें उस पार हो गयी। और पुरुष जैसे ही पुलके बीचमें आया, पुल बीचसे टूट गया।

हरी घबड़ाकर नीदमें नीख उठा। रोशनी जलायी और आवेशमें वह नौकरको पुकारने लगा।

सरन हरीके गाँवका नौकर था। अभी तीन ही महीने हुए, वह गाँव गया था और लीला बहूसे भी मिल आया था। लीला सरनसे भी नहीं

बोली थी। मानिनीकी तरह चुप रहना सीख गयी थी। जब सरन दिल्लीसे हरीके गाँवमें पहुँचा और वह लीला बहूके पास जाकर अपने-आप हरीके कुशल-समाचार सुनाने लगा, तब लीला चुपचाप उठकर अपने कमरेमें चली गयी। पाँच दिनोंके बाद जब सरन फिर गाँवसे दिल्ली वापस जाने लगा, तब वह चलते समय लीला बहूके सामने गया। सरन दो घण्टेतक लीलाके सामने खड़ा रहा, इस आशा और प्रतीक्षामें कि बहू हरीको कुछ सन्देश कहनेको कहेंगी। लेकिन उसने हरीके सम्बन्धमें कोई भी बात नहीं की; जैसे वह वीतराग हो गयी है और उसे कुछ कहनेको शेष नहीं था। फिर अन्तमें जब सरन लीला बहूके सामने माथा टेककर चलनेको हुआ, तब निश्चेष्ट लीलाने देखा था कि सरन, रो रहा है। तब लीलाने सिर्फ इतना ही कहा था, “सरन, मैं क्यों रोऊँ? किससे रोऊँ? मैं यहीं रहूँगी—कहीं नहीं जाऊँगी! मैं क्या रोऊँ?....” मरनेके बाद जब मैं यहाँसे चली जाऊँगी, तब यहाँ मेरी मिट्टी रोयेगी; मैं क्यों रोऊँ? मैं तो बहुत ही आनन्दसे हूँ!”

हरी रातके उस पिछले पहरमें सरनसे ये ही बातें कर रहा था। हरीकी बातें बार-बार लीलाके चरित्रके किनारे-किनारे घूम रही थीं और बातोंकी उस परिधिमें हरीको अनुभव हो रहा था, उसके गलेके चारों ओर कोई मकड़ी जाला बुनती जा रही है। मकड़ीका वह जाला कितना कमजोर और नगण्य था, लेकिन हरी उससे छूटकारा पाकर दूर नहीं भाग पा रहा था। हरी चाहता था कि लीलाकी छाया फिरसे उसके सामने आये और वह उस छायाको बहुत जोरसे धक्का दे कि वह चूर-चूर हो जाये, लेकिन लीलाकी छाया अब वहाँ नहीं थी। वहाँ थे केवल मकड़ीके ताजे जाले और उसके सामने बुद्धा सरन। एक जालेमें बन्दी था, और दूसरा बन्दीके रूपमें उसे देखता हुआ चुप खड़ा था।

हरी दिल्लीसे गाँव लौट रहा था, पूरे एक वर्षके बाद। स्टेशनपर उतर कर जैसे-जैसे वह अपने गाँवकी ओर बढ़ रहा था, वह सोचता जा

रहा था कि लीला उसे देखते ही उसके चरणोंपर गिर पड़ेगी, बेहद रोयेगी और क्षमा मांगेगी। लेकिन वह अपने-आपमें सन्तुष्ट होगी तो? अगर वह किसी रास्तेपर चल पड़ी होगी तो?.....तो वह स्पष्ट हो जायगी। अपने घमण्डमें पूर्ण मिलेगी।

हरी अपने दरवाजेपर पहुँचा, तो गाँवके लोग, बूढ़े और बच्चे, सब उससे मिलने आये। वह सबके बीचमें घिरा था, लेकिन उसकी दृष्टि बार-बार घरके दरवाजेपर कुछ खोजती थी कि चौखटसे लगी हुई लीला उसे याचना-भरी दृष्टिसे अपलक देख रही होगी। लेकिन वहाँ कोई नहीं था। घर बेहद सूना लग रहा था। माताजी फूट-फूटकर रो रही थीं। पिताजीकी दिवंगत आत्मा उन आँसुओंमें तैरती हुई कह रही थी, “बेटा, तू इमारत है; लीला इस इमारतकी छाया है और मैं टूटता हुआ पुल हूँ।”

माँ हरीको अन्दर ले गयी और उसने बहूको पुकारा। लीला अपने कमरेसे अँगनमें आयी और लोटेके पानीको लेकर हरीके सामने निस्पन्द बैठ गयी। हरीने उपेक्षासे मुँह फेर लिया और वह अजीब-अजीब बातें सोचने लगा। लेकिन लीलाने जैसे कुछ नहीं सोचा। वह धीरे-धीरे हरीके पाँव धोनेलगी। हरी चाहता था कि लीला बहुत तेजीसे फूट-फूटकर रोये और वह उसे देखे। लेकिन लीला रोयी नहीं, न कुछ बोली। वह साफ़ कपड़ोंमें थी। वह पीली जरूर पड़ गयी थी, उसका रंग तो साफ़ हो गया था। लेकिन वह रोयी क्यों नहीं, हरीसे बोलीतक क्यों नहीं? इतना अहं, इतना अभिमान! तो इसने फिर किसीका सहारा ले लिया होगा। तभी यह इतनी उपेक्षापर भी इस घरको छोड़कर अपने घरको नहीं गयी। कितनी निर्लज्ज है।

हरीने अपनी माँसे कहा कि माँ मैं केवल तेरे हाथका बनाया हुआ खाना खाऊँगा; और किसीके हाथका नहीं। माँ हरीकी सब बातोंपर रोती रही और समझाती रही। लेकिन हरीकी कटुता, लीलाके अभिमानकी

प्रतिक्रियामें बढ़ती हुई उसकी उपेक्षा इतनी तेज होती जा रही थी, जैसे साँपका विष।

लीलाके कमरेमें चिराग नहीं था। वह अँधेरेमें अपनी खाटपर पड़ी थी। हरी धीरेसे उस कमरेमें घुसा और सिगरेट जलानेके बहाने उसने दियासलाई जलायी। लेकिन लीलाके ऊपर किसी भी बातका असर न हुआ। हरीका कमरेमें एकाएक प्रवेश, उसका दियासलाई जलाना, उसका देखना, उसका चुपचाप खड़ा रहना, जैसे सब बातें लीलाके लिए झूठी थीं। वह निस्पन्द पड़ी थी—अस्पृश्य। उसे विश्वास था कि उसे कोई स्पर्श नहीं कर सकता।

हरी कमरेके अन्धकारमें सिगरेटकी कश लेता रहा और चुपचाप टहलता रहा। फिर उसने दबी हुई, लेकिन बहुत तेज और गम्भीर, वाणीमें कहना आरम्भ किया—“इस झूठे सत्याग्रहसे क्या फायदा! मैं जीवन-पर्यन्त अपनी इस मान्यताको नहीं बदल सकता। मैं अपनी जगह पर अटल हूँ। इस रास्तेसे मुझे लौटा लानेके लिए मेरे पिताजीकी मृत्यु हो गयी, और मैं नहीं लौटा, क्या तुझे इस बातका गुमान है कि तेरा सत्याग्रह मुझपर सफल होगा? मैं फिरसे तुझे कहता हूँ कि तू मुझे और अपनेको घोखा न दे!”

हरीकी बातोंको कमरेका अन्धकार निगलता गया। हरी चुपचाप लौट गया और लीला उसी प्रकार औंधी पड़ी रही। अन्धकारके पेटमें हरी की बातें तैर रही थीं और अन्धकार अपनी फुसफुसाहटमें लीलाके कानोंमें कह रहा था, “लात मार दे इस घरको, लात मार दे इस परम्पराको, इस आदर्शको, थूक दे ऐसे पुरुषपर। चल, उठ, निकल चल, छोड़ दे इसे और मेरे साथ आ! अपने पापाके घर लौट चल! तेरी माँ दिन-रात रोती है। तेरे पापा सूखकर काँटा हो गये हैं। चल, चली चल, अपने पापाके घर। क्यों बेकार पड़ी है यहाँ?”

धीरे-धीरे अन्धकार लीलाको सहारा देने लगा। लीला उठने लगी।

उठ खड़ी हुई; चलनेको हुई। लेकिन सहसा उसके सामने पिताजीकी छाया आकर खड़ी हो गयी। टूटता हुआ पुल रोने लगा, और लीला उस रोती हुई छायाके दामनसे लिपट गयी—“पिताजी, विश्वास रखिए, मैं कहीं नहीं जाऊँगी। मैं आपकी दिवंगत आत्माके प्रति कभी विश्वासघात नहीं कर सकती। मैं शान्तिसे आपकी छायामें रहूँगी—आपकी बेटीकी तरह। मैं अपने अन्धकारसे लड़ लूँगी, आप मुझपर विश्वास रखिए।”

हरी बाहर बेखबर सो रहा था। तब लीलाकी छाया हरीके पैताने आकर खड़ी हो गयी। उसके दोनों हाथमें चमेलीके ताजा हार थे। छाया पैतानेसे धीरे-धीरे सिरहाने आयी और हरीसे कहने लगी, “मैं जा रही हूँ, सुन ! कोई नदीके किनारे बंशी बजा रहा है—अकेला बंशी बजा रहा है। वह मेरा प्रेमी है। वह हर रातको बंशी बजाता है और मैं हर रातको उसके पास जाती हूँ। देख, मैं आज भी जा रही हूँ। सूँघ, देख मेरे हाथोंमें चमेलीके गजरे। आज मैं उसे यह भेंट करूँगी। मैं जा रही हूँ—वह मुझे बुलानेके लिए कबसे अपनी बंशी बजा रहा है। मैं जा रही हूँ, और तू मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।”

छाया धीरे-धीरे बाहर मैदानकी ओर बढ़ने लगी। हरी चौककर बहुत तेजीसे उठा और चारों ओर शून्यमें देखने लगा। उसकी साँस तेज चल रही थी और बंशीकी आवाज, अब और भी साफ उसके कानोंमें आ रही थी। हरीने क्रोधसे अपनी मूट्टियाँ भींच लीं और आवेशमें उस आवाजकी ओर बढ़ने लगा। बाहर बहुत ठंडी-ठंडी हवा बह रही थी और एका-एक हरीके कानोंसे बंशीकी आवाज टूट गयी। वह स्थिर खड़ा हो गया और थोड़ी देरके बाद अपनी खाटके पास लौट आया। लेकिन उसके रक्तमें क्रोधकी गर्मी बढ़ती जा रही थी। उसने बड़े तीखे स्वरमें भीतर माँको आवाज दी। माँ दौड़ी बाहर आयी।

“क्या है ? क्या है बेटा ?”

“लीला कहाँ है ?”

“भीतर है !”

“भीतर नहीं है।” हरीने कड़े स्वरमें कहा, “मैंने देखा है, वह अभी-अभी बाहर गयी है। किसीने बंशीकी आवाज देकर उसे बुलाया है। मैंने बंशी भी सुनी है और मैंने उसे उसके पास जाते हुए भी देखा है।”

“नहीं तो बेटा, लीला बेटा तो मेरे पास सोयी है !”

“झूठ है, माँ ! तुझे रोज धोखा दिया जाता है !”

हरीका हाथ पकड़कर माँ उसे भीतर ले गयी और आँगनमें पहुँचकर माँने हरीको दिखाया, “देख, वह पड़ी है मेरी खाटपर लीला। वह कभी मुझसे अलग सोती ही नहीं—पूरे वर्ष हो गये, वह मेरे अंकसे चिपककर सोती है !”

माँने रोशनी की ओर हरी उस रोशनीको लिये हुए माँकी खाटपर गया। लीला अस्त-व्यस्त सो रही थी—बेखबर, उसके पीले चेहरेपर शान्ति थी और उसकी बन्द आँखें आँसुओंमें डूबी थीं।

हरी निस्पन्द था और उसकी आँखें लीलाके पीले चेहरेपर टिकी थीं। वह रोशनी लिये हुए उसके पैताने जाकर खड़ा हुआ और उसकी छाया लीलापर पड़ने लगी। हरी हतप्रभ, उदास, निश्चेष्ट खड़ा रहा। तब धीरे-धीरे वह टूटा हुआ पुल आया, बहुत नजदीक आ गया और रोता हुआ कहने लगा, “मैं एक ढाँचा हूँ, इमारत नहीं ! इमारत तू है ! मैं उसका कारीगर हूँ। और लीला मेरी इमारतकी छाया है।”

था, जो बावजूद अपनी सारी कोशिशोंके और मजदूरोंसे पिछड़-पिछड़ जाता था, और बार-बार उसे अन्य मजदूरोंकी घुड़कियाँ, फफोले और बातें सुननी पड़ रही थीं।

“तिसपर बराबरका हिस्सा माँगने चलता है,” एक मजदूरने बड़ी तीव्रतासे कहा, “काम न काज।”

दूसरेने और बढ़कर समर्थन किया : “इसके संग कौन काम करे ! कलसे मैं न आऊँगा !”

तीसरेने कमर सीधी करते हुए कहा : “तुम क्यों, हीरादासको हम अपने संग नहीं रखेंगे—साफ़ क्यों नहीं कह देते कि हीरा कलसे हमलोगोंके संग कामपर नहीं आयेगा ! यह कोई और काम क्यों नहीं कर लेता !... कहीं जनानासे मर्दाना काम हुआ है !”

एकने फौरन डाँटा : “जरा जबान ठीक करके बोला कर ! हीरादास जनाना है। तू बड़ा आल्हा-ऊदल बनके आया है ! जबानपर लगाम नहीं रहती ! इसी कन्नौपर अठारह घण्टे काम करनेपर भी जबानको अच्छी चीज नहीं मुअस्सर होती !”

डाँटनेवाला मजदूर सबसे बुजुर्ग था। सरके सारे बाल पककर सन हो गये थे। फिर भी सबसे तेज गोड़ाई कर रहा था, और हीरादासको अपनी बायों ओर रखकर उसकी सहायता भी करता चल रहा था। यह बात अन्य मजदूरोंको और भी बुरी लग रही थी। कुदार चलाते-चलाते कहता जा रहा था : “बेचारे हीरादासकी किस्मत फूट गयी, नहीं तो हम जैसे सात मजदूर उसकी खिदमतमें लगे रहते थे। किसीके बुरे दिन आ-गये तो इसके माने यह नहीं कि वह बुरा हो गया।”

हीरादास चुप था, और झुका हुआ यंत्रवत् कुदार चलाता जा रहा था। मानो क्रियाका सारा भाव उसके भीतर सुन्न पड़ गया हो, मात्र कुदार चलती जा रही हो और उसका चलानेवाला वहाँ हो ही नहीं—अगर हो भी तो उसकी सारी प्रेरणाशक्ति कहीं बन्दी बन गयी हो !

सफ़ेद हाथी

भोरसे दोपहर हो चला था। जेठकी दोपहरोमें उस ऊखके खेतमें ऐसा लगने लगा था कि जैसे ऊपरसे सचमुच आग बरस रही है, और नीचेकी सारी ज़मीन उस आगसे जल रही है। और उसपर मुट्ई पछियाँवके निर्मम झोंके।

वह पक्के डेढ़ बीघेका एक खेत था। खूब ऊख लगी थी। और चार पानीके बाद ऊखके पौदे उस समय दो-ढाई हाथ तकके हो गये थे। उन्हीं पौदोंके बीचसे ऊखकी गोड़ाई हो रही थी। ऊखके लम्बे पत्तोंमें गजबकी पैनी धारें थीं जिनसे नंगे मजदूरोंके सारे हाथ-पैर चारों ओरसे छिनछिना उठे थे। उन पतले महीन धावोंमें उनके बदनसे बहता हुआ पसीना सचमुच नमक डालता चल रहा था।

थोड़ा-सा खेत और रह गया था, उसीको खत्म करनेके लिए पाँचों मजदूर जी-जानसे पिल गये। लेकिन उनमेंसे एक मजदूर बहुत कच्चा

वास्तवमें हीरादास जो कर रहा था, नहीं-नहीं, जो उसे करना पड़ रहा था, वह उसका स्वत्व न था। वह कुछ और था—बिल्कुल दूसरा। इसलिए जो उसे करना पड़ रहा था, उसके लिए वह स्वयं अपनेको मार-मारकर, खींच-खींचकर उस बिन्दुपर ला रहा था—लाना चाह रहा था। तभी वह पीछे था, चुप था, सब सह रहा था और इससे भी आगे वह अपनेको बिल्कुल बदल देना चाह रहा था। क्योंकि उसे जीना था—अकेले नहीं, उसकी पत्नी है, तीन बच्चे हैं, एक विधवा बहन है। और खेत केवल तीन बीघे हैं।

हीरादासकी कुदार अपने-आप चलती जा रही थी। जैसे किसी नौसिद्धियेके कच्चे हाथोंमें कोई यंत्र पकड़ा दिया गया हो! खेत खत्म होने-को आ रहा था! हीरादासकी कमर न जाने कबकी झुकी-झुकी बिल्कुल टेढ़ी पड़ गयी थी। हाथ-पैर कांपने लगे थे। आँखोंके सामने रह-रहकर कुछ अँधेरा हो जाता था, लेकिन लाज और ग्लानिवश हीरादासकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि वह एकक्षण खड़ा होकर ज़रा कमर तो सीधी कर ले!

हीरादासकी कुदार चलती जा रही थी। और एकाएक कुदार अपनी पूरी गति और धारसे हीरादासके दायें पैरमें लगी—आधा अँगूठा और उसके नीचे एक लम्बा-गहरा घाव हो गया। हीरादाससे रूका न गया, खड़ा भी न हो सका, बस तबकी भाँति जलती हुई ज़मीनपर लुढ़क गया।

हीरादास न किसान था, न मजदूर, वह कथिक था—पुस्तोसे उसके यहाँ केवल नाचने-गानेकी कला सिखायी जाती थी। वह कला ही उसके वंशकी श्री थी।

रामपारा गाँवमें हीरादासके घरके अतिरिक्त और भी आठ-दस घर कथिकोंके थे। पर और कथिकोंने खेती कर ली थी, केवल लगनके दिनोंमें इधर-उधर नाच-गा आया करते थे। रामपारा ऊँचेडीहके राज्यमें था।

और ऊँचेडीहके राज्यसे इन सारे कथिकोंको जो खेत मिले थे, उनकी सारी लगान माफ़ थी। लोग बताते हैं कि रामपारा गाँव ऊँचेडीहके पहले राजा त्रिभुवन बहादुर द्वारा बसाया गया था।

हीरादासका पिता ओंकार कथिक ध्रुपद और ख्याल गानेमें अद्वितीय था। ऊँचेडीहके वर्तमान राजा जंगबहादुरने ओंकारको अपना खास दरबारी गवैया बना रखा था, और अपनी कोटके बिलकुल सामनेवाली हवेलीको उसके परिवारके लिए दे रखा था।

हीरादासका जन्म ऊँचेडीहके राजाकी उसी हवेलीमें हुआ था। वहीं उसका बचपन बीता, राजाश्रयसे प्राप्त सारी सुविधाओंके बीचसे वह वहीं कलाकार भी बना। पितासे उसने ध्रुपद और ख्याल सीखा। और अनुपम नृत्यकी प्रतिभा उसे ईश्वरकी तरफ़से मिली।

पिताकी मृत्युके उपरान्त हीरादास दरबारका कलाकार हुआ। हीरा नाम उसे राजा हीने दिया था और उसके नृत्यसे प्रसन्न होकर एकबार तो बड़ी रानीने उसके दोनों पैरोंमें सोनेके घुँघरू बँधवा दिये थे। एक-एक पैरमें पाँच-पाँच सौ घुँघरूके तोड़े बाँधकर हीरादास नाचता था। और जब चाहता था कि उसके हज़ार घुँघरूओंमेंसे नाचते समय एक भी घुँघरू न बोले तब वह वैसा ही कर दिखाता था। जैसे जादू था उसके पैरोंमें, गतिमें, लय और मुद्रामें। नाचते-नाचते वह सब घुँघरूओंका मुँह एकाएक बन्द करके कभी केवल एक घुँघरूको बजने देता, कभी दो, कभी पाँच, और कभी केवल एक पाँवके घुँघरू बजते। दूसरे पाँवसे लगता कि उसमें घुँघरू ही नहीं हैं।

लालसाहबको ब्याहने जब ऊँचेडीहके राजाकी बारात राजा प्रीतमगढ़के यहाँ गयी थी, और ब्याहके तीसरे दिन जो राजाओंका दरबार लगा था, उसमें हीरादासके ध्रुपद गायनको लोग अब तक नहीं भूलते। हीरादासका उस समयका चित्र अब भी राजा प्रीतमगढ़की बैठकमें टंगा हुआ है।

आज तीन वर्ष हुए, हीरादास अपने ऊँचेडीहके राजासे विदा पाकर न जाने (कबके छूटे हुए अपने) गाँव—रामपारा—में चला आया। उसने कभी स्वप्नमें भी न सोचा कि वह उतने ऊँचेसे इस तरह गिरेगा—और ऐसा गिरेगा कि उसे उसके सिवा और कोई न सँभाल सकेगा। ऊँचेडीहके राजाका राज्य छिन जायगा और एक पूरी बस्ती, एक पुरानी परम्परा, इतिहासशाली आधार देखते-देखते खिसक जायगा।

हीरादासके पास संयोगवश जो कुछ पूँजी बची थी, इनाम-एकरामकी वस्तुएँ थीं, और इसके भी आगे, तीन वर्ष पूर्व जो कुछ उसे विदाईमें मिला था, सबके आधारसे उसने रामपारामें एक मामूली-सा खपरैलका घर बनवाया। नोन, तेल, लकड़ीके भावसे परिचित हुआ। पासके बाजार तूतीपारसे बेच-खरीदकर दिन काटने लगा। पर एक ही वर्षमें वह सारी पूँजी जवाब दे गयी। दूसरे वर्ष गाँवके पटवारीने उसे सुझाया कि उसके हकमें तीन बीघे खेत हैं।

खेत मिले, पर वह खेती करना तो जानता ही न था। उसकी पत्नी तो सदा पदमें रह आयी थी। मजदूरी दे-देकर उसने खेती करायी, तब वह वर्षके अन्तमें और भी लुट गया। जो लगाया था, वह भी न लौटा। फिर वह अपने हाथसे खेती करने चला। हल चलाना सीखा। ढेंकुर चलाना सीखा। गोड़ाई-निराई आदि सीखनेमें वह अपने-आपसे जूझ गया।

कुएँपर जिसदिन वह पहले-पहल पानी चलाने गया था, वह लाजसे डूब गया था। ढेंकुर चलाने समय उसके सरके लम्बे-लम्बे घुँघराले बाल, जिनके पट्टोंमें जौनपुरकी सच्ची चमेली और जुलफोंमें लखनऊ और दिल्लीके क्रीमती खस और मोतिया इत्र लगते थे—वही बेशक्रीमत बाल उस दिन उसे दुश्मन जैसे लगे थे। ढेंकुरके साथ झुकते समय वे नाज़से पले पट्टे बार-बार उसके सामने बिखर जाते थे और उसके सामने धुप अँधेरा हो जाता था। वह काम नहीं कर पाता था। ऊपरसे लोग उसकी हँसी उड़ाते थे। उसी रात हीरादासने अपने सरको मुड़ा दिया। नहा-धोकर जब वह

दर्पणमें अपना मुख देखने गया, वह सहसा फूटकर रो पड़ा। ठीक उस स्त्रीकी तरह बिलख पड़ा, जिसके हाथकी सारी चूड़ियाँ फोड़ दी गयी हों। फिर पूछनेवालोंसे पैंतीस वर्षका हीरादास कह देता था—वह बुढ़ा हो गया है। बूढ़ेके सिरपर क्या बाल ! और यह कहकर वह अपने मनमें हमेशा रो देता था—जैसे पतिकी याद दिलाते ही कोई विधवा रो पड़ती है। जब हीरादासका राजा ही न रहा, फिर हीरादास कहाँ !

वह अब किसान है—किसानीसे भी हारकर विवश हो अब तो मजदूरी करने लगा है। उन हथेलियोंमें घट्टे पड़ गये हैं, उन अँगुलियोंका सौन्दर्य मिट गया, जो नृत्यकी मुद्राओंसे सम्मोहित करती थीं। उसके पैरकी हालत तो और भी बदतर हो गयी थी। बिलकुल बदशकल हो गये थे—मैले-गन्दे, बेवाइयोंसे भरपूर।

और इन सबके ऊपर आज हीरादासके दायें पैरमें कुदारसे उतना बड़ा घाव हो गया था।

खेतसे एक पैरसे चलकर वह पाँच बैठकमें अपने घर आया। घावमें कितनी भी धूल-भरी गयी, कितनी भी धोती फाड़-फाड़कर बाँधी गयी, पर खून धरतक बहता आया।

रातमें उसे तेज़ बुखार चढ़ आया। सरहाने बैठी हुई उसकी पत्नी भीगी पलकोंमें देख रही थी—वे दिन जब हीरादासको जरा-सा बुखार हो आता था, नज़ले या जुकामकी शिकायत हो जाती थी, और उसे देखने तुरत डाक्टर और हकीम दौड़ते थे। उसे वह घटना रह-रहकर याद आ रही थी, जब हीरादासके पेटमें जरा-सा दर्द उठा था, और उसे देखने राजा नंगे पाँव दौड़े थे। कहीं गला न खराब हो जाय। हीरादासके भोजनका खास प्रबन्ध होता था और उसपर भी हमेशा डाक्टरकी देख-रेख होती थी।

बुखारकी हालतमें हीरादास उठ-उठ बैठता था। अपनी पत्नीको पकड़कर हाँफते हुए कहता : “बिन्दो ! अब मैं यहाँ न रहूँगा ! ऊँचेडीह जाऊँगा। हम सब ऊँचेडीह चलेंगे। सरकारने मेरे राजाका राज्य छिन

लिया है। उसका सब कुछ ले लिया है, पर अभी मेरा राजा तो जिन्दा है फिर क्या कमी है मुझे। मैं अपने राजाके पास जाऊँगा। आत्माको परमात्मा ही चाहिए। गंगाको शिवकी जटा चाहिए। मैं अपने प्रभूकी शरण जाऊँगा। मेरा वह राजा, और मैं उस राजाका कलाकार। मैं यहाँ न रहूँगा बिंदो! ओ बिंदो, सच मैं अब यहाँ न रहूँगा। हीरादास उसी आवेशमें गाने लगा :

सर सूखे पंछी उड़े, और सरन समाहि ।
दीन मोन बिन पंखके, कह रहीम कह जाहि ॥

बिंदोने सम्हालकर हीरादासको लिटा दिया। और उसे नींद लगनेके लिए अनेक तरहसे समझाने-बुझाने लगी। हीरादास धीरे-धीरे फिर भी गा रहा था : “दरस बिन दुखन लागे नन । जबके तुम बिछरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायो चन । बिरह-कथा कासूँ कहूँ सजनी वह गयो करवत ऐन ।”

पैरका घाव उसे आठ-दस दिनोंतक खाटसे बाँधे रहा। और जब वह चलने-फिरने लायक हुआ, तब उल्टे बिन्दोको समझाता रहता था—कि क्यों री, अब क्या जाऊँ ऊँचेडीह ! पता नहीं राजा कैसे है ! मैंने तो उनके दुखको तभी देखा था, जब अपने पाँच सौ सिपाही, खिदमतगार और साईसोंके सामने उन्होंने कहा था : “अब मैं राजा न रहा। मैं तुम्हीं जैसा साधारण आदमी बना दिया गया—इसलिए अब मुझे साधारण ढंगसे ही रहना होगा। तुम सबको आजसे छुट्टी है। मैं तुम सबको क्या विदाई दूँ। तुम्हीं लोगोसे मैं ‘मैं’ बना था—और जब तुम्हीं लोग जा रहे हो, तब मैं क्या, मैं कहाँ।” इससे आगे राजा साहबका कण्ठ सूँघ गया था, औह वह तेजीसे मुड़कर अपनी बारहदरीमें छिप गये थे। क्यों री बिंदो ! तू क्या कहती है ? मुझे नहीं जाना चाहिए न ? क्या जाऊँ उस दुःखी राजाके यहाँ, और भी दुःख देने ! तूने देखा नहीं था—जब मैं दरबारसे बिदा हो रहा था—और मैं रो रहा था, तब राजा साहब और लालसाहबकी क्या हालत थी। कितने चुप थे वे लोग—भोगे—बरसे हुए। झुकी रह

गयी थीं निगाहें। मुझे खूब मालूम है उनके भीतरकी पीड़ा। हम क्या दुखी हैं, बिन्दो। हम तो मजदूरी भी कर सकते हैं, वे बेचारे क्या करेंगे ! क्या करते होंगे। मुझे यह नहीं भूलता, बिंदो ! जब हमलोग दरबारसे नीचे उतर रहे थे, तब उस तिमंजिलेकी अटारियोंपर बड़ी रानी माँ, मझली रानी, और प्रीतमगढ़की रानीने किस तरह हमें देखा था—आह ! मैं मर क्यों न गया, बिंदो ! मैं क्यों यहाँ चला आया ! राज्य जब्त होनेके तीसरे ही दिन जैसे राजाके वे दस घोड़े मर गये, देखते-देखते चिड़ियाखानेके अनेक जीव चल बसे, वैसे मेरे प्राण क्यों नहीं निकल गये ? वे जीव नमकहलाल थे जो राजाके दुखको न सह सके। जीना ही नापसन्द किया।”

बिंदो हीरादाससे पूर्ण सहमत थी। और आश्चर्य भी थी कि हीरादास रामपाराको छोड़ कहीं जायगा नहीं।

लेकिन जैसे ही हीरादासका पैर पैदल यात्रा करने योग्य हुआ, एक रात उसने अपना तानपूरा लिया और चुपचाप ऊँचेडीहकी ओर रवाना हो गया।

दो कोसकी दूरीसे हीरादासको राजाकी कोट दिखाई दी। धौरहरेपर बने हुए दुर्गाजीके मन्दिरका कँगूरा दिखाई दिया। और ज्यों-ज्यों वह ऊँचे-डीहके पास पहुँचने लगा, उसकी दृष्टि ऊपर-ही-ऊपर टँगी रही; कभी राजभवनकी अटारियोंपर, कभी मन्दिरके कलशोंपर और कभी शिवालेके त्रिशूलपर। जैसे हीरादास जमीनपर न चल रहा हो, बस आकाशमें उड़ रहा हो।

ऊँचेडीहकी बस्तीमें घुसते ही उसे ऐसा लगा, जैसे सब लोग उसीको देख रहे हैं और वह कहीं धँसा जा रहा है। एकाएक उसकी दृष्टि करीमखाँ पर पड़ी—वह करीमखाँ जो घुड़सालके सवा-सौ साईसोंका जमादार था, और जिसका काम घोड़ोंको नयी-से-नयी चाल सिखाना था। हीरादासने उस करीमखाँको जब बहुत पाससे देखा, बहुत गौर किया, तब पहचान सका। उसने बाजारमें इक्के-ताँगेके घोड़ोंकी नाल बाँधनेका पेशा कर

लिया था। रुपये-सवा रुपये रोजकी आमदनी हो जाती थी। रिक्शावालों-की वजहसे इनके-ताँगेमें भी घोड़े कम हो रहे थे।

करीम खाने बड़े आदरसे हीरादासको अपने उस लकड़ीके बक्सपर बिठाया, जिसमें नाल बाँधनेके सामान बन्द थे। उसने हीरदासको बताया कि राजा साहबकी तबीयत ठीक नहीं रहती। सारी कोटको छोड़कर एक किनारेकी हवेलीमें पड़े रहते हैं। कभी बाहर नहीं निकलते। केवल एक हाथी है—वही सफ़ेद हाथी, जिसकी पूजा बड़ी रानी किया करती थीं। केवल तीन घोड़े रह गये हैं। दो वही, राजाकी जोड़ीवाले, और एक वह, जो रामगढ़से आया था। और शेषमेसे कुछ बिक गये, और अनेक तो मर गये।

हीरादाससे आगे कुछ न सुना गया। वह जी लेकर वहाँसे भाग खड़ा हुआ। अब उसका जी होने लगा कि वह चुपचाप रामपारा लौट जाय। वह किस मुखसे राजासे बातें करेगा—बातें सुनेगा। किन्तु आँखोंसे उन्हें देखा-दिखाया जायगा!

पर हीरादासके पाँव जो थे, वे राजाके सामने पहुँचनेके लिए जैसे बेताब थे।

थोड़ा ही सा दिन शेष था, जब हीरादास राजभवनके सामने पहुँचा। और उसे एकाएक लगा जैसे कोई खूबसूरत स्वप्न था, जो बिल्कुल बीत गया। लोग उस स्वप्नपर अब शायद विश्वास नहीं कर सकते।

पूरे राजभवनपर उदासी बरस रही थी—चारों ओर चुप—निःस्पन्द। जैसे कहीं कोई गीत नहीं, उल्लास नहीं। जैसे कोई डाका डाल गया है। हीरादासको सारा राजभवन बदला-सा लग रहा था—जो पुराना था, वह जैसे कहीं डोल गया था—जो था वह जैसे उसीकी धुँधली-धुँधली छाया मात्र थी।

हीरादासके आनेकी सूचना ज्योंही राजाको मिली, वह स्वयं अपनी हवेलीसे निकलकर उसका स्वागत करने आये। अपने संग उस कमरेमें

ले गये, जहाँ राजाके प्रायः चौबीस घण्टे बीतते थे। राजा हीरादासको चुप-उदास होकर देखते, और हीरादास अपने राजाको। लेकिन एक-दूसरेकी दृष्टि जैसे आपसे मिल नहीं पाती थी।

न जाने कौन स्वभाव उनके बीचमें खिचा हुआ उनके सर झुका देता था। एक देखता तो दूसरेका सर झुका होता। जैसे वे दोनों परस्परके दोषी हों, जैसे दो बहुत दिनोंके रूठे और टूटे हुए दोस्त आमने-सामने पड़ गये हों।

साँझ घिर आयी। तब बहुत दिनोंके बाद राजा हीरादासके साथ दीवानखानेमें आ बैठे। वहीसे हीरादासकी नजर उस इमारतपर गयी, जो हीरादासका घर था। फिर वहाँ बैठे-बैठे हीरादास स्वप्नोंमें घिर गया। अतीतके अनेक स्वप्नोंके असंख्य राग उसके मनके तारोंको छूने लगे। वह जहाँ नाचता था, जहाँ गाता था, जहाँ जश्न होते थे, जहाँ दरबार था, वे सब उठ-उठकर जैसे उसे घेरने लगे।

उसी समय राजभवनके द्वारपर कुछ आदमियोंकी तेज़ आवाज़ उभरने लगी। राजा सुनते थे, पर जैसे टालते जा रहे थे। पर वह आवाज़ दबती ही न थी—बल्कि उत्तरोत्तर उभरती जा रही थी। दरवान, दो सिपाही और खास मुह्तारकी भी बोलियाँ आ रही थीं।

राजासे रहा न गया। दीवानखानेसे निकलकर द्वारपर गये। देखा, ऊँचेडीहसे कुछ किसान आये थे। और सब-के-सब जैसे उत्तेजित थे। वे यह शिकायत लेकर आये थे कि राजाका सफ़ेद हाथी उनके दो बीघे ऊखके खेत चर गया है। वे लोग राजासे जवाब माँग रहे थे। नहीं तो ग्राम-पंचायतमें राजापर मुकदमा दायर होगा।

राजा चुप थे—बिल्कुल निःस्पन्द।

एकाएक उन्होंने महावतको बुलाकर, अपने हाथीको दरवाजेपर लानेकी आज्ञा दी।

बड़ी मस्त चालसे बार-बार सूँढ़को ऊपर-नीचे गिराता हुआ राजाका

वह अन्यतम पूज्य हाथी अपने मालिकके सामने लाया गया। राजाने हाथी को देखा और उस हाथीने अपने मालिकको। बार-बार वह अपनी सूँढ़से राजाके चरणोंको छूलेता और जैसे उनके चरण-रजको बड़े गर्वसे अपने मस्तक पर ले जाता। राजा चुप थे—चुपचाप मुड़े। बड़ी तेजीसे बढ़कर भीतर गये, क्षणमात्रमें लौटे। हाथमें रायफल थी, जो बिजलीकी तरह तनकर हाथीके मस्तकपर जा फूटी। भयानक चीत्कार करके हाथी जमीनपर बैठ गया। उसी क्षण दूसरी भी गोली छूटी, जो उस चिम्धारते हुए महाजीवको चुप कर गयी। जैसा कोई छोटा-सा पहाड़ उस द्वारपर लुढ़क गया हो।

सब पागलसे खड़े देखते रह गये। राजाने दूसरी आज्ञा खास-मुख्तार-को दी : “इन्हें इनके दो बीघेकी पैदावारका मुआवजा दे दो।”

बन्दूक लिये राजा अपनी हवेलीकी ओर बढ़े। हीरादास राजाके पैरोंमें बाँध गया, चीखकर रोने लगा : “मुझे भी मार दो राजा ! मुझे भी मार दो ! मुझे भी मार दो !” राजा अपनी गतिमें बढ़ते जा रहे थे; कमरेमें पहुँचकर उन्होंने हीरादासको देखा। पहली बार उनकी आँखें मिलीं।

कुछ कौंधकर रह गया—कुछ, जो बेहद करुण था, बेतरह घायल था। हीरादास अपने राजाके हाथसे मरनेके लिए जैसे छटपटा रहा था। राजाने गंभीरतासे कहा, लेकिन गीले स्वरोमें : “हीरादास होशमें आओ !”

“मुझे अब नहीं जीना है मेरे राजा, मुझे मरना चाहिए !”

“तुम भी जानवर हो क्या ? तुम भी जानवर हो क्या ?” राजाने कई बार दुहराया और झुककर हीरादासको उठा लिया : “हीरादास, तुम कलाकार हो। तुम भी मौतकी बात करोगे……अगर तुम भी मर जाना चाहोगे तो……”

राजाकी वाणी एकाएक पिघल गयी। बाँध टूट गया, फूटकर रो उठे, फिर बोलते भी गये : “तुम तो जिलानेवाले हो। तुम्हें भी मार दूँ ? फिर क्या रह जायगा ? कुछ भी तो नहीं रहा, हीरादास ! हीरादास ओ हीरादास !”

यह कहते-कहते राजा बेहोशसे हो गये। हीरादासमें कुछ जग गया, कहींसे प्राण मिल गया। शरीरके अणु-अणु, रंघ्र-रंघ्रमें जैसे कोई मोड़ दे-देकर उसे सातवें तार तक खींचने लगा।

तानपुरेके संग हीरादासके स्वरमें एक अद्भुत आलाप फूटा। ध्रुपद गाने लगा ! और उस स्वर-संगीतसे वहाँ कुछ भरने लगा—भरता गया। पता नहीं कितना समय बीता, कितनी रात बीती, वे दोनों मदहोश जैसे पीते रहे—एक कलाकार, एक कलाका जन्मदाता और उपासक—एक शराब, एक शराब बनानेवाला। एक जाम, दूसरा पीनेवाला।

हीरादास जब विलकुल थक गया, तब चुप हुआ। लेकिन उसकी आँखें तब भी बन्द थीं, और आँसुओंकी धारा उनमेंसे बह रही थी।

राजाने अत्यन्त स्नेहसे पूछा : “कहो हीरादास, कैसे हो ?”

“बहुत अच्छे हूँ मेरे राजा ! घरके सब लोग बड़े आनन्दसे हैं। हम-पर कोई किसी तरहका भी कष्ट नहीं है। खेती करता हूँ—रयाज भी करता हूँ—नहीं, नहीं……अब रयाज करूँगा। रोज़ करूँगा और हर सातवें दिन आपके पास आऊँगा !”

“सच ?”

“हाँ, मेरे राजा, जो मुझे आपसे मिला है, मैं उसका अपमान न होने दूँगा। कोई उसे नहीं मार सकता !”

“और तुम हीरादास ?”

“मैं……मैं……मैं……जिलाऊँगा……मैं जिलाऊँगा अपने उस सफ़ेद हाथीको ! मैं अपनी कलासे उस हाथीको जीवित करूँगा।”

तानपुरेके साथ हीरादास कमरेसे बाहर निकल गया, और राजद्वारपर गिरे हुए उस सफ़ेद पर्वतके पास जा बैठा।

नहीं कौन-सी, कैसी शान्ति उन्हें मिला करती थी उन बन्द चूहोंकी भयाकुल, त्रस्त निगाहोंमें ।

आँखोंके सामने चूहेदानी लटकाये वह अपलक देखने लगे । लेकिन चूहे थे कि अपनी नज़र लालासे मिलने ही न देते थे । पर उनसे नज़र मिलानेकी इच्छा लालाकी उतनी ही बढ़ती जा रही थी ।

सहसा पीछेसे आवाज़ आयी, 'ओ सीताके बाबू ! रहने दो आज ! देर हो गयी है, रातको कर लेना !'

लालाजीने चूहेदानीके बीचसे अपनी पत्नीको देखा । चूहोंसे उनकी दृष्टि न मिली, पर आज पत्नीकी आँखोंको उन्होंने देखा :

पत्नीने उनके हाथसे चूहेदानी छीन ली, 'रखो इसे ! और कोई काम-वाम नहीं है तुम्हें ? चलो मुँह-हाथ धो लो !'

'और ये चूहे !'

'चूहे क्या मरे जा रहे हैं ? रातको छोड़ आना !'

'रातको छोड़नेसे चूहे फिर उसी घरमें वापस लौट आते हैं !'

'तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है ! चूहे.....चूहे.....चूहे.....हूँ !'

लालाको अपने साथ लिये हुए सीताकी माँ आँगनमें चली आयी ।

दोपहर हुआ । खा-पीकर लाला बाहर अपनी दूकानपर बैठे ! गद्दीपर उनका जी ही न लगता था । बार-बार उनके ध्यानमें चूहेदानी टँग जाती थी, और उनका मन काँप उठता था; उन्हें ऐसा लग रहा था, जैसे उनके गोदाममें दो बन्द चोर बैठे हैं, जिनका इतनी देर तक घरमें बन्द रहना अच्छा नहीं ।

जाड़ेके दिन थे । लालाजी गद्दीसे उठे । अपनी कश्मीरी शाल ली, गोदाममें गये, चूहेदानीको चुपकेसे शालके घेरेमें छिपा, झट बाहर निकल आये । सड़कपर उतरकर उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा कि उनके आस-

घरके चूहे

उस दिन लाला पदमचन्दकी आँख कुछ देरमें खुली । हड़बड़ाकर उठे, तो देखा, सूरजकी किरनें सामने चरनलालके बारजे तक बिछ चुकी थीं । अपनेपर बेहद झुंझलाहट आयी, और सारे घरपर मन जल-भुन उठा । देखो न नमकहरामियोंको ! जैसे सब मर गये, किसीको तो जगाना था ।

भावावेशमें चारपाईसे उठकर सीधे गोदामवाले कमरेमें गये । चूहेदानीपर नज़र गयी तो बाहें फड़क आयीं । घूरकर देखने लगे, दो मोटे चूहे आ फँसे थे । लालाजीने झट चूहेदानी उठा ली, और आँखोंके सामने उसे टाँगकर न जाने क्या देखने लगे । दोनों जीव चूहेदानीमें इतनी तेज़ी और भयसे भागने लगे जैसे खुले घरमें उनकी नज़र किसी बिलावसे मिल गयी हो । लालाजीको हँसी आ गयी, ऐसी हँसी जो शिकारके वक़्त अपनी सफलतापर किसी बहेलियेको आती है ।

लालाजी ऐसे समय चूहोंकी आँख देखना बेहद पसन्द करते थे । पता

पाससे गुजरनेवाला हर एक व्यक्ति चूहेदानीको देख ले रहा है। लालाजीने रिक्शा कर लिया और बहुत तेजीसे बस्तीके बाहर हो आये।

रिक्शेको छोड़ वह आगे पैदल चलने लगे। रिक्शावाला बस्तीकी ओर चला और लालाजी आगे बढ़ते हुए भी घूम-घामकर रिक्शेवालेको देखने लगे।

जब वह लालाकी आँखोंसे ओझल हो गया, तब वह आश्वस्त हुए। शाल कन्धेपर उलट ली। जमीनपर बैठकर फिर आँखोंके सामने चूहेदानी लटकायी। अकस्मात् इस बार एक चूहेको नजर उनसे मिली। उन्हें लगा, जैसे जलती हुई मोमबत्तीकी लौ काँप गयी हो।

मुसकराकर लालाने चूहेदानी खोल दी। कुछ क्षणों तक वे चूहे बाहर ही न निकलते थे। झटका देनेसे एक चूहा निकला और निर्लक्ष्य तेजीसे भागकर मिट्टीके बीच दुबक गया, जैसे इतनी ही दौड़में उसकी साँस फूल गयी हो।

दूसरा चूहा चूहेदानीसे निकलता ही न था। लालाको देर हो रही थी। तब पूरी शक्तिसे झटका देकर उन्होंने चूहेदानी उलट दी। चूहा गिरकर सँभला और अपनी पूरी शक्तिसे खुले मैदानमें भागने लगा। वह कहीं छिपा नहीं, बल्कि उसने जैसे पूरे मैदानको उसी क्षण पार कर लेना चाहा। छलांगे मारकर भाग रहा था। लालाजी खड़े देख रहे थे। एकाएक आसमानसे चील्ह झपटी और चूहेको दबोच ले गयी।

चील्ह लालाके सिरसे ऊपर उड़ी। उन्होंने सुना, चूहा अजीब स्वरसे चीं-चीं, चूँ-चूँ कर रहा था।

लालाजी घर पहुँचकर सीधे अपनी पत्नीके पास गये। चूहेदानी फेंकते हुए बोले, 'मुझसे यह न होगा सीताकी माँ।'

'कौन कहता है कि तुमसे हो!' सीताकी माँ शामके नाश्तेके लिए, गाजरका हलुआ बना रही थी। भरी कड़ाहीकी झुँझलाहटसे जमीनपर रखती हुई बोली, सबके घर चूहे हैं, सबके घरोंमें गोदाम हैं, सब खाते-पीते

हैं, तुम्हारे ही दिमागमें न जाने क्या बैठ गया है ले चूहेदानी, पकड़ चूहे। बाप रे बाप! जैसे पूरी बस्तीके चूहोंके तुम्हीं जिम्मेदार हो। बहुत देखा पर तुम्हारे जैसा एक नहीं, दुनियाके लोग हैं। 'आज पाँच सालसे ऊपर हुए तुम्हें चूहे पकड़ते।'

सीताकी माँ आवेशमें उठी, चूहेदानी ले जाकर न जाने कहाँ रख दी। और पूरे घरके क्षेत्रफलमें घूम-घूमकर वह अपने पतिको खरी-खोटी सुनाती रही।

लालाजी वहाँसे ऐसे टले कि उनके पाँव बाहर अपनी गद्दीपर भी न रूके। वह घरसे बाजारमें चले आये।

लाला पदमचन्दजी शामतक बाजारमें घूमते रहे। निर्लक्ष्य-अनमनेसे बड़े बाजारसे सुरती टोलातक घूम आये। रास्तेमें पड़नेवाले आढ़तियोंसे रामजुहारी करते गये। सुरती टोलासे बजाजा मुहल्ला, वहाँसे अँची मण्डी और वहाँसे पंसारी गलीतक हो गये। गेहूँ, बाजरासे लेकर सोने-चाँदीतकके बाजार-भाव पूछते गये पर जैसे उनका मन कहीं न टिका। घर लौटनेकी भी इच्छा न रही।

दिन डूब गया। लालाजी जैसे स्वयं अपने-आपको मनाकर घर लाने लगे।

अपने मुहल्लेके चौराहेपर पहुँचे थे कि सामनेसे किसीकी अर्थी चली आ रही थी, जिसके पीछे बहुत लम्बी भीड़ थी।

अर्थी पास आ गयी। लाला पदमचन्दको यह जाननेमें देर न लगी कि किसका स्वर्गवास हुआ। वह बिहारीमल था, जो अपने तीन बेटोंके कन्धों-पर श्मशानकी ओर जा रहा था।

दिसम्बरके दिन थे। दिन डूबनेके बाद सदीं पड़नी शुरू हो गयी थी। लाला पदमचन्दसे कुछ न सोचा गया। वह जैसे थे, ठीक वैसे ही बिहारी-मलकी अर्थीके साथ लग चले। और पूरी भीड़के स्वरमें अपना स्वरदान करने लगे, 'रामनाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है।'

लाला पदमचन्दको बिहारीमलकी मृत्युपर न दुःख हुआ, न आश्चर्य, जैसे वह होना ही था, आज ही हो गया, और अच्छा हुआ।

सन् अड़तालीसका समय था, राशनिगके नाजुक जमाने। सब खाने-पीनेकी चीजें तो किसी तरह मिल भी जाया करती थीं, लेकिन कपड़ेके लिए चारों ओर हाय-हाय मची थी। जिसके पास जितना ही था, वह उतना ही भूखा हो गया था। फल यह हुआ था कि कपड़े ही का व्यापार सब व्यापारोंका बादशाह बन बैठा था। जैसे बाँध तोड़कर लक्ष्मीकी धारा घरमें आती थी और ऊपरसे पूरे जमानेपर एहसान लाद देना उसका केवल व्याज-सा था।

लाला बिहारीमलको उस समय परमिटसे कपड़ा बेचनेका शहरका पूरा कोटा मिला था। लोग बताते हैं इसके लिए उसे एक हज़ारकी थैली ज़िलेमें और दो हज़ारकी कहीं और ऊपर देनी पड़ी थी। अन्य साहू और लाला लोगोंने बिहारीमलकी होड़में कुछ और भी ज्यादा रुपये खर्च किये थे। पर बिहारीमलके सामने सबको बाज़ी हारनी पड़ी थी। क्योंकि बिहारीमल सबकी अपेक्षा अधिक ईमानदार और सरकारका विश्वासपात्र भी था।

साल बीतते उसपर एक भयानक घटना आयी। कपड़ेके गोदाममें न जाने कैसे आग लगी और ऐसी लगी कि पूरा गोदाम जलकर खाक हो गया।

बिहारीमलका सब डूब गया; सपना, विश्वास, व्यापार, ईमानदारी और मेहनत सब कुछ। लड़के समझदार हो गये थे, काम-धाम देखने-सुनने लायक हो गये थे पर सबके भविष्यपर जैसे प्रश्न-चिह्न लग गया।

बिहारीमलके हाथसे कपड़ेका कारोबार छिन गया। लड़कोंने और काम-धन्धे कर लिये। आटेकी मशीन चला ली। मशीन चली, और मशीनकी तरह बिहारीमलकी गृहस्थी भी चली, पर बिहारीमलकी चोट उसे घायल कर गयी। ऐसा घाव, जो उसे बीमार कर गया। बीमार और... बीमार और आटेकी मशीन... मशीनका घूमना।

लाला पदमचन्दके सामने आटेकी मशीन घूम गयी और घूमती रही। वह श्मशान-भूमिमें बैठे बिहारीमलकी जलती चिता देखते रहे।

जैसे वहाँ बिहारीमलकी चिता नहीं जल रही थी, बल्कि उसके कपड़ेका गोदाम जल रहा था।

लाला पदमचन्द जब अपने घर लौटे, उस समय करीब ग्यारहसे ऊपरका समय हो रहा था। घरमें घुसे तो ठण्डसे काँप रहे थे; न साथ कम्बल था, न तनपर मोटे ऊनी वस्त्र।

घरकी आग बुझ गयी थी; चूल्हे न जाने कबके ठण्डे पड़ गये थे। सीताकी माँ सो गयी थी। जगानेकी हिम्मत न हुई लालाकी। घरका नौकर भी न था; महुरी भी न पुकारी जा सकती थी।

मन दबाकर, हाथ-पैर बाँधे वह अपने पलंगपर बैठे। दो कम्बल, एक लिहाफ़ और एक कश्मीरी शालमें भी ढलकर उन्हें गर्मी न मिली। जैसे सारा शरीर ही गलता जा रहा हो और भीतर कुछ घुटने-सा लगा हो।

लालाजी ठण्ड खा गये, जैसे वह जूड़ीका आक्रमण था। जूड़ी, फिर उसी आवेगका बुझार।

लालाको बुझार चढ़ता जा रहा था। आँखें मुँदी थीं, उनमेंसे आग बरस रही थी और दृष्टिके सामने चिनगारियाँ उठ रही थीं, लपटों जैसी चिनगारियाँ। और लालाजी उसके बीचसे देख रहे थे।

लाला पदमचन्दका एक पुराना नौकर रभुआ दो चूहोंकी पकड़ता है। उनकी पूँछोंमें मिट्टीके तेलमें डूबा हुआ खूब कपड़ा बाँधता है। फिर उनमें आग लगा देता है और दोनों चूहे भागकर बिहारीमलके कपड़ेवाले गोदाममें घुस जाते हैं।

और बिहारीमलकी जगह लाला पदमचन्द कपड़ेवाला बन जाते हैं।

लालाजीकी आँखें जैसे आगकी चिनगारियोंसे भर आयीं। उन्होंने आँखें खोल दीं। रुके हुए आँसुओंसे उनका मुख भीग गया।

प्याससे गला रुक गया था। करवट बदलकर उन्होंने सीताकी माँको आवाज़ देना चाही। पर स्वर न फूटे।

न जाने क्यों डरसे आँखें मूँद लीं, घुटनोंको हाथोंसे कसकर बाँध लिया। दृष्टिके सामनेका चित्र बिलकुल स्याह पड़ता जा रहा था और उन्हें अनुभव होने लगा, जैसे उनके ऊपर असंख्य चूहे घूम रहे हों और उनके ओढ़े हुए वस्त्रोंको कुतर-कुतरकर अनेक रास्ता बनाते हुए भीतर घुस रहे हों।

सीताकी माँ उठी। चूहेदानीको ढूँढ़कर उसमें मिठाईके टुकड़े रखे और उसे लिये अपने गोदामके कमरेमें रखने गयी।

उसी समय एक चीख सुनायी दी। सीताकी माँ घबराकर दौड़ी। लालाजी पलंगमें डरसे सिकुड़कर बिलकुल बिन्दु जैसे गोल हो गये थे और धीरे-धीरे कराह रहे थे।

अपने ऊपर सीताकी माँकी बोल सुनते ही लालाने काँपते हाथोंसे उसके सरको जकड़ लिया।

‘यह क्या हो गया तुम्हें’ सीताकी माँने घबराकर पूछा।

लालाने कुछ कहना चाहा, पर स्वर न आये, बस सर हिलता रहा, और आँखें मूँदती-उघरती रहीं।

हाथसे संकेत करते हुए उन्होंने कहना चाहा, ‘सुनो, बंठी सीताकी माँ! मैं सब बताता हूँ।’

बसन्त-प्रिया

जैसे बुआको कोई राज्य मिल गया हो। घरमें पैर रखते ही कहने लगीं—“मनो आ गयी! मनो आ गयी! अरे कहाँ है बसू? मनो आ गयी! कहाँ हो तुम, बसू? मनो आ गयी!”

बसू नहानेके कमरेमें खड़ा दाढ़ी बना रहा था। बुआका आतुर स्वर उसके कानोंमें पड़ रहा था, और वह तेजीसे अपने-आपको बार-बार आईने में निहारकर तौलियेसे दाढ़ी बना मुख पोंछता रहा। बुआकी उस जीवित पुकारके उत्तरमें वह बोलना चाह रहा था, पर उसके हृदयकी धड़कन जैसे उसे रोक लेती थी, और विवश हो वह अपने-आपको शीशेमें देखने लगता था। जैसे कोई उससे अलक्ष्य स्वरोमें कह रहा हो, “पहले शीशेमें अपना मुँह तो देख लो।”

“पर यह शीशा झूठा है। यह भीतर कहीं टूटा हुआ है। यह मेरी

छाया नहीं है। यह छल कर रहा है। इसमें जो छवि उभर रही है, वह छलना है इस झूठे दर्पणकी।”

तब तक बुआ सामने आ गयीं, और बुआके प्रसन्न मुखको वह देखता रह गया। और उसे लगा, मनो जैसे बुआ हीके घर आयी है, मनो बुआ हीकी है। इतनी आतुरता, इतना आह्लाद—जैसे बुआको कोई खोया हुआ रत्न मिल गया हो।

विधवा बुआजीकी अवस्था पचास सालसे कम नहीं है, पर उनके अनेक दर्दोंने उन्हें इतना जीवित और रसमय बना रखा है, कि बुआ शिशु-वत् आकर्षक हैं।

बुआजीके एक लड़का था सुरेश। तेरह वर्षका होकर वह नहीं रहा। ब्याहसे पहले मनो जब बसूके संग हँसती-बोलती, दोनों दिन-दिन-भर एक-दूसरेके संग रहते, तब बुआ भीतरसे भरी-भरी अपने-आपसे कह उठतीं, “आज मनो जैसी मेरी बहू भी होती—इतनी ही सुन्दर और भाग्यवान् !” बुआके एक लड़की भी थी—अलका। वह भी दस सालकी होकर चल बसी। आजसे पाँच साल पहले, जब मनोकी शादी हो रही थी, उन दिनों बुआ एक ओर हँसती रहतीं, और दूसरी ओर रोती रहतीं। “आज मनोकी ही तरह मेरी बेटो भी हुई होती, और इसी भाँति उसका भी ब्याह होता !”

बसूने देखा—बुआके मुखपर मनोके लिए वह सम्पूर्ण स्नेह, वह सारी ममता इस तरह बरस रही थी, कि कोई उसमें सहज ही डूब जाय, रसमय हो जाय।

“और यह सब, इतना सारा मेरे ही कारण हुआ”, यह सोचते हुए, बसू नहानेका कमरा बन्द करते हुए, बुआजीसे बोला—“बुआ, मैं जरा नहा लूँ। अभी आया।”

बसू बन्द कमरेमें खुले नलके नीचे नहाने लगा।

बुआ आँगनमें खड़ी-खड़ी, मंत्रमुग्ध हो सुनने लगीं। बसू आज गुन-

गुना रहा है, कितने वर्षों बाद। उस अनोखे प्रभावमें बहकर बुआ अपने ठाकुरजीकी मूर्तिके सामने जा, अजब करुण स्वरमें गाने लगीं :

“जब ते ब्रज तजि गये कन्हारि ।.....”

बसू कपड़े बदलकर, चुपचाप खड़ा देखता रहा बुआजीको। जी होता था, कि वह भी गाये, पर बुआके संग चल पानेकी ताकत उसमें न थी। बुआकी आँखें खुलीं, तो सामने बसूको खड़ा देखा। वह हँसने लगीं सहसा।

बसूने कहा—“बुआ, साढ़े-दस तो आज यहीं बज गये। दफ़तरकी बहुत देर हो गयी। नया सुपरिण्टेण्डेंट आया है, परेशान कर देता है। अब दफ़तर भागूंगा, बुआ।” और वह लपका बरामदेकी ओर, जहाँ साइकिल खड़ी थी।

“क्या, क्या? यह सब क्या कह रहे हो?” बुआने आगे बढ़कर बसूकी साइकिल पकड़ ली। “चलो, खाना खाओ। बड़ा इनका दफ़तर, और सुपरिण्टेण्डेंट! क्या कर लेगा वह? अर्जी भेज दो न।”

बसू चुपचाप जाकर भोजन करने लगा।

बुआने स्नेह-भरे स्वरमें कहा—“आज दफ़तर मत जाओ। देख लेना मनो आज ही हमारे घर आयेगी।” मनोके लिए अब एक दिन दफ़तर नहीं छोड़ सकते, जब इसी मनोके लिए एक समय बी० ए०की परीक्षा छोड़ दी थी? याद करो न।”

“बुआ, हाथ जोड़ता हूँ, जाने दो आज। मैं जल्दी ही आ जाऊँगा—तीन-चार बजे तक।”

और बसू भोजनके बाद बुआके सामने तब तक नत-सिर खड़ा रहा, जब तक बुआने हँसकर उससे यह न कहा—“अच्छा, जाओ। लेकिन घड़ीकी सूई देखकर अगर तुम ठीक तीन बजे तक यहाँ न आ जाओगे, तो मनोसे तुम्हारी कुट्टी करा दूँगी, हाँ।”

बसू साइकिलकी जाँच करने लगा। और बुआ उसके आस-पास

जैसे गुनगुनाती रहीं—“वह बेचारी पाँच साल बाद आयी है। जिसे देखे बिना एक क्षण भी नहीं रह पाते थे, उससे आज तीन बजे मिलने आयेंगे ! वह अभी दौड़ी आती होगी। मैं क्या जवाब दूँगी उसे ? उसकी महत्ता देखो, ज़रा भी मान नहीं करती, अब भी नहीं करती। मिलते ही इन्हींको पूछने लगी।”

बसू तेज़ीसे साइकिल चलाता हुआ सड़कपर निकल गया। नित्यकी भाँति बुआ दरवाज़ेपर खड़ी हुई बसूको तब तक निहारती रहीं, जब तक वह दूरके चौराहेसे रेलके पुलके नीचे आँखोंसे ओझल न हो गया।

बुआ इतनी प्रसन्न थीं, कि उनका मन, प्राण, सब जैसे गा रहे थे। मनोके स्वागतमें झटपट सारा घर सजाने लगीं। चन्दन और अगलूकी सुगन्धि मनोको बहुत प्रिय है। बसूको गंदेके पुष्प बहुत अच्छे लगते हैं। मनोको दरवाज़े और खिड़कियोंपर पीले पर्दे प्रीतिकर हैं। और बसूको ऐसे कमरेमें घूम-घूमकर गुनगुनाना अच्छा लगता है।

बसूको उसकी साइकिल विवशतः दफ़्तर खींच ले गयी, यद्यपि रास्तेके हर चौराहेपर उसका मन अपने वर्तमानसे पीछे भागनेके लिए बेतरह तड़फड़ाता रहा।

मनोके पापा एक अच्छे प्रसिद्ध ऐडवोकेट हैं। दिनरात क़ानून और मुकदमोंमें फँसे रहते हैं। घरका सारा काम नौकर-चाकर करते हैं। मनोकी माँ दमेके रोगसे सदा पीड़ित रहती हैं। दो छोटे-छोटे भाई हैं, जो कन्वेण्टमें पढ़ते हैं।

बसू डाक्टर दीनबन्धु, एम० बी० बी० एस०, का इकलौता पुत्र है। माँके स्वर्गवासको करीब सात साल हो गये। तभीसे इस घरमें स्नेहमयी बुआजी आयी हैं। जैसे माँसे भी बड़ा हृदय है इनका। डॉ० पापा बसूका पूरा नाम लेकर पुकारते हैं—बसन्त। और बुआको पापाजी सदा ‘बड़ीजी’ कहते हैं, यद्यपि अवस्थामें बुआ छोटी हैं।

तो दोनों घरोंका स्तर प्रायः समान है। दोनों घरोंके पापा व्यस्त रहते हैं। दोनों घरोंमें मा-रूप उठ गया है। उनका स्थान किसी औरने ले रखा है। रुपयोंकी कोई कमी नहीं इन घरोंमें। जैसे अभाव किसीने जाना ही नहीं। बच्चे दोनों घरोंके जितने स्वतन्त्र हैं, उससे अधिक वे पापा लोगोंको नज़रोंमें सम्मानित एवं विश्वासप्राप्त हैं। और इन सबसे बड़ी बात यह है, कि दोनों पापाकी आपसमें बड़ी दोस्ती है। जब कभी अवसर मिलता है, दोनों आपसमें निश्चय ही ‘ब्रिज’ या ‘फ्लश’ खेलते हैं, और संग-संग कभी तोबा भी तोड़ लेते हैं।

यह अद्भुत अतीत अचानक बसूके सामने अविचल आ खड़ा था, फंख बाँधे, और बसू उसे भोगी द्रष्टाकी भाँति देख रहा था, और डर-डरके पहचान रहा था। और कहीं इस सबके अन्तसमें, पूरे विस्तार और गहराईमें मनो तथा बसूकी युगल मूर्ति अपनी अजब छवि और शक्तियोंमें डोल रही थी।

बसूके डॉ० पापा नगरके अच्छे डाक्टरोंमेंसे एक हैं। बसू और मनो यूनिवर्सिटीमें पढ़ रहे हैं। मनो पढ़ने और खेलने, दोनोंमें बहुत तेज़ है। साथ-ही-साथ सुन्दर भी बहुत है। बसूका मन न बहुत पढ़ने हीमें लगता है, न किसी खेल हीमें। घूमना या कमरेमें बैठे रहना उसे पसन्द है। इसमें अपनी शोभा है—एक मौलिक व्यक्तित्वका सम्मोहन है, जो बाहर-भीतर चारों ओरसे समान है। वह ज़रा भी मिलनसार नहीं है। लोगोंके सामने अपने-आपको ज़रा भी प्रकट नहीं करना चाहता। ईश्वर-प्रदत्त उसके भीतर एक बहुत बड़ा गायक बैठा है। अनोखी आवाज़ मिली है उसे। क्या गला है ! और बसू स्वभावतः दो ही चीज़ें गाता है—सूरके पद और गालिवका कलाम। मनोका संगीतसे कोई सरोकार नहीं है। वह तो खूब पढ़ती है, और खेलती है—सदा प्रथम श्रेणी और खेल-कूद। पर वह बसूके संग चौबीसों घण्टे रहना चाहती है।

और इस जीवन-धर्मी प्रीतिकी असंख्य सुधियाँ हैं, असंख्य स्मृतियाँ,

जिसके किसी एक तारके बजनेमें वृन्दावनकी सुधि होती है—मुरली, मान और राधा ।

नवम्बरके दिन हैं । सुबह-ही-सुबह मनो बसंतके घर दौड़ी आयी है । वह अपने आँचलमें शीत-स्नात गेंदेके फूल ले आयी है । बसू अपने कमरेमें अब तक सो रहा है । मनो उसके मुखपर झुककर, सारे सिर-माथेपर गेंदेके शीतलतम फूल रखती जा रही है । हँसी पीनेके लिए वह अपने मुखमें रूमाल बाँधे हुए है । बसूका सारा मुख जब फूलोंसे पट गया, और वह तब भी न जगा, तो उसकी हँसीका बाँध सहसा टूट गया । पर आश्चर्य कि बसू तब भी न जगा । उसी समय कमरेमें बुआजी आयीं, ट्रेमें चाय लिये हुए । बुआकी आहट पाते ही बसू जग पड़ा । और पूरे मुख और सिरपर बिछे पुष्प पलंग और फ़र्शपर बिखर गये ।

बुआने मन्द मुसकानसे कहा—“यह फूल कौन किसे मार रहा है ?”

दोनोंको निरुत्तर देखकर बुआने बात बदल दी, और चाय बनाने लगी ।

बसू जब भाव-विभोर होकर मनोके लिए कुछ गाता, तो मनो आँख मूँदकर जैसे भक्ति-स्वरमें मनमें कहती, “बसूके लिए मैं संगीत बन जाती !”

मनो अपने पढ़नेकी किताब लेकर वक्रत-बेवक्रत किसी भी समय बसूके यहाँ चली जाती । तब वह अपनी किताबें दूर रख, बसूको उसीकी किताब पढ़कर सुनाने लगती । पर बसू टालकर उसे कहीं घुमानेके लिए ले जाता—कभी अपनी कारपर, कभी उसकी कारपर । और वह उसे तरह-तरहके फूल दिखाता फिरता, या गीत सुनाने लगता । मनो जैसे ही इस क्रममें कहीं ऊब अनुभव करती, वह झट खेल-कूदकी बातें करने लगती, और बसूको परेशान करके घर देती ।

मनोकी एक वर्षगाँठपर बसूने उसे एक सितार भेंट किया ।

दूसरी बार वाइलिन ।

और तीसरी बार दोनों पैरोंके बन्द-जड़े घुँघरू । तब उस बार मनोने

विवशतः चिढ़ते हुए पूछा—“आपने मुझे म्यूजिक मास्टर समझ रखा है क्या ?”

बसूने उत्तर दिया—“कुछ जरूर समझ रखा है । पर तुम्हें क्या ? यह सब मेरे भाव हैं ।”

“अच्छा, जी, मुझे क्या ? यह बात !” मनो आँखें नचाकर रह गयी ।

और इसका उत्तर मनोने व्यावहारिक ढंगसे दिया । बसूकी अगली वर्षगाँठपर उसने उसे एक ढाई सेरवाला ‘इनसाइक्लोपीडिया’ भेंट किया । दूसरी बार एक दर्जन ‘शटिल काक’, एक ‘रैकेट’ और ‘नेट’ । और कहती रही—“तुम्हें क्या मतलब, जी ? यह सब मेरे भाव हैं !”

तीसरी बारके डरमें बसू हार मान गया । और दोनोंमें लिखित सन्धि हुई :

“केवल भाव,

केवल भाव ! वस्तु नहीं ।”

नीचे दोनोंके स्पष्ट हस्ताक्षर । गवाहीमें बुआजीका नाम । दिन, तारीख । लिख दिया गया ताकि वक्रतपर काम आये ।

एक अति रंगीली सुधि—चटक, चटकीली, सुगन्धिमय, शोभित, सुन्दर ।

मनो बी० ए० प्रथम वर्षकी परीक्षा दे रही है । बसू बी० ए० द्वितीय वर्षमें बैठ रहा है ।

उन दिनों मनोकी परीक्षा नहीं हो रही थी । बसू उसके घर होता हुआ अपनी परीक्षा देने जा रहा था । सुबहका समय ।

मनोने कहा—“रुको, जी । तुम्हारा मुँह मीठा करा दूँ ।”

और बसूके मुँहमें दही, चीनी, शहद, शक्कर, फल, फूल आदि सब डाला गया । पर उसका मुँह मीठा होता ही न था । हर चीज़में उसे नमकका स्वाद मिल रहा था ।

मनो एकके बाद एक चीज खिलाली हुई पूछती चल रही थी—“अब मुँह मीठा हुआ ?”

बसू सिर हिलाता चल रहा था ।

अन्तमें मनोने कहा—“जाओ, तुम्हारा मुँह कभी मीठा नहीं होगा ! अजी, तुम्हारा मुँह ही ऐसा है ! मैं क्या करूँ ? कोई क्या करे ?”

यह कहती हुई मनो कमरेमें भगी । वसूने पीछाकर उसे बाहोंमें पकड़ लिया । फिर बसूने आँखोंमें अपने आपको छिपाकर कहा—“अब मेरा मुँह सदा मीठा रहेगा—मीठा, बहुत मीठा !”

“लेकिन मेरा मुँह तो सदा नमकसे भरा रहेगा !” मनो हँसती रही ।

बसूको बेर हो गयी । वहाँ परीक्षामें प्रश्न-पत्र बँट गये होंगे । वह तेजीसे भागने लगा । मनोने धीरेसे कहा—“भागते क्यों हो ? अगले साल हम लोग एक साथ बी० ए० फाइनलकी परीक्षा देंगे ।”

“ऐसी बात ! चलो, स्वीकार—उसी ‘मीठे’ की स्मृति में !” बसू कहकर, रुक गया ।

मनो उसे भेजनेके लिए सारे प्रयत्न करके हार गयी । वह परीक्षा देने न गया, न गया ।

एक स्मृति और !

बसूके डाक्टर पापाका एकाएक हार्ट फेल्योरसे स्वर्गवास हो गया । उसी वर्ष मनोकी शादी तै हो गयी—देहरादूनमें किसी इञ्जीनियरके साथ ।

मनो विदा हो रही है । दूर कहीं, बहुत दूर, सबसे छिपा हुआ, एक किनारे बसू खड़ा एकटक कुछ निहार रहा है । स्टेशन पहुँचनेके लिए बारातके लोग कारोंपर चढ़ रहे हैं । पतिके संग अन्तमें दूल्हन मनो निकल रही है । पीछे-पीछे दो सहैलियाँ हैं । एकके हाथमें सितार है, और दूसरीके हाथमें वाइलिन । पति कारमें बैठा । उसने आज्ञा दी कि सितार और वाइलिन नीचे रख दिये जायँ । मनो आँचलसे बँधी रहनेपर भी कारके दरवाजे-

से इधर-उधर कहीं कुछ बूँदें रही थी । उसी क्षण सितार और वाइलिनके विषयमें पतिकी आज्ञा सुनकर, वह जग-सी गयी ।

“नहीं, ये नीचे नहीं रखे जायेंगे !” धीमे किन्तु दृढ़ स्वरमें उसने कहा ।

सितार और वाइलिनको लिये हुए, मनो कारमें बैठ गयी । और जब कार चलनेको हुई, उस क्षण मनो सितार और वाइलिनपर इस तरह झुक गयी, जैसे कोई वैष्णव रसमय होकर समर्पणमें तिरोहित हो जाता है ।

पतिने उसे सँभालते हुए कहा—“अरे ! सब तार टूट आयेंगे ।”

मनोने उत्तर दिया—“नहीं, टूटेंगे नहीं ।”....

एक बजते-बजते मनो बसूके घर आ गयी । बुआ उसके स्वागतमें कबसे द्वारपर खड़ी थीं । डाइंग-रूममें आकर, बुआ मनोको देखकर जैसे मुख हो गयीं । जैसे सामने कोई सप्राण मूर्ति खड़ी हो—पावन और सम्मोहक । जूड़ेमें इतने बड़े-बड़े गेंदेके फूल । चन्दन जैसे माथेपर इतना सरल टीका । बड़ी-बड़ी लम्बी खिची आँखोंमें इतना काजल, और उनमें सागरकी गहराई ।

अंग-अंगपर रूप-लावण्य । और सबपर केवल भाव-ही-भाव ।

मनोने अपने बटुएसे कुछ निकालकर बुआको देते हुए कहा—“यह आपके लिए लायी हूँ, बुआ—राधा-कृष्णकी मूर्ति । पिछले वर्ष हम लोग पुरी गये थे ।”

“इतनी क्रीमती मूर्ति !” बुआ चकित-सी देखती रह गयीं ।

“तुम क्या अमूल्य नहीं हो, बुआ ? तुम इस मूर्तिकी पूजा करोगी, तन्मय होकर गाओगी—“सखी मोरे नंना बान परथो !....” मैं समझूंगी रस-प्रिया मैं ही हूँ । इसमें मेरा ही स्वार्थ है, बुआ ।”

मनो एक जगह खड़ी न रही । सारा घर मन्दिर जैसा साफ-सुथरा और पावन लग रहा था । चारों ओर चन्दन और अगरुकी सुगन्धि फैली

थी। मनोका जी होता था, कि हर जगह माथा झुकाया जाय। वह घरमें चारों ओर घूमती रही—जैसे कुछ खोज रही हो।

“बसू कहाँ है, बुआ ?” मनोने थककर पूछा।

“वह दफ़्तर गया है, बेटी। वह डी० एस० आफिसमें काम करता है न।”

“आफिसमें काम ! उन्हें पता था न, कि मैं आयी हूँ ?”—मनोने बड़े मानसे कहा।

“पता था उसे। मैंने ही बताया था। वह तीन बजे आ जायगा।”

“दफ़्तरमें काम करते हैं ?” डी० एस० आफिसमें ? मनोको जैसे एक क्षणको होश हुआ। पर वह कुछ समझी नहीं। जैसे विश्वास ही न हुआ।

“हाँ, और कोई कहीं नौकरी न मिल सकी”, बुआजी बताने लगीं—
“डॉ० भैयाके बीमेसे दस हजार रुपये मिले थे, वह सब कुसुमकी शादीमें लग गये। बसू डॉ० भैयाका दवाखाना चलाना चाह रहा था—केमिस्ट शापके रूपमें। डाक्टर साहबकी कार केवल दो हजारमें बिकी। उन रुपयोंको उसने दूकानमें लगा दिया। पर किसी डाक्टरको बिना बैठाये दूकान चलती ही न थी। बहुत मुश्किलसे एक डाक्टरको सुबह-शामके लिए ढाई सौ रुपये महीनेपर बिठाया गया। पर सब नुकसान ही रहा। अन्तमें दूकान टूट गयी।”

बुआ यह सब कथा मनोको इस तरह सुना रही थीं, कि उसमें कहीं व्यथा न उभरे। उसकी छायातक न पड़े, कि वह मनोको कहीं चुप न कर दे। मनो तो मनो है न। तरह-तरहके विषयान्तरके संस्पर्शसे बुआ सब बताती रहीं।

बसूकी पत्नी विद्याका फोटो लाकर बुआने मनोको दिखाया। कितनी सीधी और भोली स्त्री है—सुगृहिणी और परिश्रमी। उसके दोनों बच्चे, माला और सान्तुनके चित्र भी मनो देखती रही। कितने प्यारे बच्चे हैं। बसूकी सारी छवि सान्तुनको मिली है—वही चौड़ा माथा, वही गम्भीर

आँखें, वही दीप्ति, वही प्रकाश। और माला जैसे माँ और बुआ, दोनोंको पड़ी है।

“बसूने मुझे कभी पत्र नहीं लिखा। जैसे मेरा अविश्वास किया हो।” मनोकी आँखें तरल हो आयीं, और शेष सब उसके कण्ठमें रँध गया।

बुआने सँभालना शुरू किया—“नहीं, नहीं, भला ऐसा भी कभी हो सकता है ? बसूको मैं खूब जानती हूँ। पत्र लिखना ही कोई सबूत थोड़े है। सोचो न, चुप रह लेना कितना कठिन है, कितनी बड़ी बात है। आखिर मैं तो तुम्हें बराबर चिट्ठी लिखती रही हूँ न ?”

“हाँ, वर्षमें एक बार !” मनोके स्वरमें उपालम्भके भाव वनीभूत थे।

“तुम्हारा पता भी तो ठीक नहीं रहता था। मैं क्या करती ? ब्याहके बाद ही तुम पतिके सँग कभी आस्ट्रेलिया, कभी बर्मा, बम्बई, मद्रास और जाने कहाँ-कहाँ घूमती रहीं। सो जब तुम्हारा पत्र कभी बसूके नाम, कभी मेरे नाम आता था, तभी हमें पता लगता था कि तुम कहाँ हो।”

“पर उन्हें कभी एक पत्र तो लिखना था। या मैं इतना भी अधिकार नहीं रखती ? क्या-क्या होता गया, मुझे जानने योग्य भी न समझा !” लगता था, जैसे मनो अभी बुआके अंकमें सिर गड़ाकर रो देगी।

बुआने झट कहा—“इस बार बसू तुम्हारे सँग जायगा। कुछ दिन नैनीताल, कुछ दिन मसूरी रहेगा। जी भरके रखना उसे अपने सँग।”

“जी भरके !” मनो देखती रह गयी। कहींसे वे तीनों साज़ एक संग बज उठे, सितार, वाइलिन और घुँघरू, और पृष्ठभूमिमें बीन, बाँसुरी, पखावज और शहनाई, सब-कुछ उसी एक स्वरमें—उसी सितार, वाइलिन और घुँघरूकी संगतमें।

बसू कब आयेगा ? अब तो तीन भी बज गये। बुआ परेशान होकर इधर-उधर झाँक रही हैं, सड़कपर देख रही हैं। क्या हो गया आज बसूको ? अपनी बातसे टल रहा है।

मनो फिरसे बच्चोंके चित्र देखने लगी। ये सब बच्चे माके संग ननि-हाल गये हैं—कानपुर।

“कबतक बच्चे यहाँ आयेंगे, बुआजी ?”

“अभी पन्द्रह-बीस दिन हुए हैं उनको गये। विद्याके छोटे भाईकी शादी थी। बसूको समुरालवालोंने बहुत बुलाया, लेकिन वह तो कहीं आने-जानेका नाम ही नहीं लेता। अब यह है, कि बच्चे यहाँ अभी आ जायें।”

उसी समय मनोके पापाजीका नीकर आया, मनोको बुलाने। और बुआके मनमें रचित सारी अल्पनाएँ मनोके प्राणमें खिंचे हुए समस्त बन्दन-वार सहसा उदास हो गये।

चार बज गये।

और अब तो पाँच भी बज गये। बसू अबतक नहीं आया।

बुआ राधा-कृष्णकी मूर्तिको पूजा-घरमें स्थापित करने लगीं।

बसू आठ बजे रातको घर आया—बिलकुल मौन, दबे-पाँव, नित्यसे पूर्णतः विपरीत, असहज। बुआ खड़ी देखती रहीं। बसू आज न कुछ कह रहा है, न कुछ माँग रहा है।

बुआने पूछा—“क्या बात है, बसू ? सब ठीक है न ?”

“हाँ, बुआजी, सब ठीक है। आफिसमें आज ऐसा काम ही आ पड़ा। मुझे भूख लगी है, बुआ, मैं भोजन करूँगा।”—बसूको इतना कहनेमें जैसे बेहद प्रयत्न करना पड़ा।

बसूकी जिज्ञासाके बगैर ही बुआने एक-एक करके सब बताया—मनोके आनेसे जानेतकके एक-एक क्षणको बात, और जैसे एक-एक क्षणकी अनुभूति।

बसूने दीवारकी ओर मुँह करके धीरेसे कहा—“बुआजी, मैं यहाँ तीन बजे आया था, पर घरमें नहीं आ सका। क्षमा माँगता हूँ, बुआजी ! दफ्तरमें रुकने और देरतक काम करनेकी सारी बात झूठी थी। मुझे क्षमा करना, बुआ !”

बुआजी शिशुवत् हँसती रहीं।

“मुझे क्या क्षमा माँगते हो ? अरे, जाकर उससे क्षमा माँगो, जो पाँच सौ मीलकी दूरीसे तुम्हें देखने आयी थी।”

बसू चुप, उदास बैठा रहा। उसे अब नींद आ रही है। दस बजेतक सो जानेकी आदत बन गयी है। छः बजे उठ जाना, दस बजे दफ्तर पहुँच जाना। पाँच बजे घरके लिए चल देना, और घर आकर दस बजेतक सो जाना। महीनेकी पहली तारीखको वेतन। दूसरी-तीसरीको दूकान और बाजार—राशन, चीनी, तेल, साबुन, नमक, घी, लकड़ी, ब्लेड, कोयला। यह वृत्त, यह परिधि। इसी गोलेमें घूमते रहना, घूमते चलना—लक्ष्यहीन, निजत्वहीन। कितना नीरस, प्राणहीन और बोझिल, सिरसे पाँवतक चूर-चूर कर देनेवाला !

बुआने स्नेह-भरे मनसे कहा—“मनो जो थी, वही है, और उससे भी अधिक रसपूरित है। तुमने सुना नहीं, अब मनो गाती है, सितार बजाती है, और नृत्य भी सीख गयी है। वही सितार वही धुँवरू। सब वही उसके पास सुरक्षित है। सब संग ले आयी है। और वाइलिन—”

बुआ सहसा झुंझला गयी। “बसू, तू इस तरह चुप क्यों है ? क्या हो गया है तुझे ? न कुछ पूछना, न बोलना। एक मनो है इनके लिए, एक यह है उसके लिए। पर—”

“मैं उसके लिए अब कहाँ हूँ, बुआ ?” बसूने अपने अन्तसका सारा बल लगाकर कहा—“मैं बाल-बच्चोंके लिए हूँ, इस गृहस्थीके लिए हूँ।”

“बड़े बाल-बच्चेवाले आये ! घर-गृहस्थी वाले ! कोई छीन ले रहा है जैसे। मैं नहीं हूँ तुम्हारी गृहस्थीमें क्या ? तू अकेला ही है क्या ?”

बुआजीका मुख देखकर बसू हैरान रह गया।

“अच्छा, बुआजी, मुझे क्षमा कर दो ! मुझे नींद आ रही है। अच्छा कल।”

भागते हुए बसूको बुआजीने पकड़ लिया।

“किससे क्षमा ? किस बातके लिए क्षमा ?”

बुआने उसे पकड़े-पकड़े अपने अंसे लिपटा लिया। “तुम्हारे लिए मनो एक गिटार ले आयी है, तथा गालिबका दीवान और सूरसागर।”

फिर बुआने एक बन्द लिफाफा देते हुए कहा—“तुम नहीं आये। मनो तुम्हारे लिए यह पत्र छोड़ गयी है, और कहा है कि सुबह बहुत तड़के उसे इसका उत्तर मिलना चाहिए।”

बसूने पत्र पढ़ा। वैसा ही पत्र, वही शैली, वही विषय। बसूको सारी दिशाएँ निष्प्राण और शून्य लगने लगीं। सामने डी० एस० आफिसकी फाइलें घूमने लगीं। मनोकी बात सोचते ही उसके भीतर कुछ थर-थर कांपने लगा। मनो प्रियाकी जगह उस स्त्रीके रूपमें प्रत्यक्ष देखने लगी, जिसे सोचते ही घर-गृहस्थीका ध्यान हो आता है—राशन, कोयला, नमक, तेल, लकड़ी, माचिस, साबुन, दवाइयाँ, बटन, ‘बिल’ और ‘डेफिसिट बजट’, बाल-बच्चे, उनका पालन-पोषण। और अपने अहं और निजत्वकी निर्मम हत्या।

आज मनोका वह पत्र बसूको उदास बना गया। उसमें चरित्रके सिद्धांत और वेदान्तकी बातें उभरने लगीं। मनोके जो पत्र कभी उसमें कदलीवनकी मादकता भर जाते थे, स्त्री-मात्रमें जो उसे प्रियाकी सुधि दिलाते थे। मनो-मनो—उसके पत्रकी एक-एक पंक्ति, उसकी हर आदत, हर गतिमें नीलम-देशकी वह राजकुमारी बसती थी, जो सदा किसी राजकुमारकी प्रतीक्षा करती रहती है, जो शबनमके वस्त्र पहनती है, संगीत जिसका भोजन है, और जिसकी सेवामें सहस्रों परियाँ लगी रहती हैं।

बसूको मुलाकर बुआजी सो गयीं। रातके पिछले पहर बसू एक स्वप्न देखता-देखता उड़ खड़ा हुआ। स्वप्न था एक मन्दिरका, जो सितार और वाइलिनके तारोंपर खड़ा था। और उस मन्दिरमें, राधा-कृष्णकी मूर्ति हटाकर, कोई दफ़्तर खोला जा रहा है। मूर्तिके सामनेके गायक और नृत्य

करनेवाली, दोनोंको बंदी कर लिया गया है, और नर्तकीके एक-एक धूँधरको बंदूककी गोलीके रूपमें चारों ओर दागा जा रहा है।

यह स्वप्न बसूके जगनेपर भी उसके सामने खिंचा था। और सामने मनोका पत्र। बसूको एक बार इच्छा हुई, कि उस परम एकाकीपनमें अपनी समस्त शक्तिको संचित कर वह उस पत्रका उत्तर लिखे।

इस अपूर्व प्रेरणासे वह लिखने बैठा। लिखनेके पहले फिरसे पत्र पढ़ने लगा—पढ़ता रहा, और पढ़ता ही रह गया। फिर उसने देखा—सुबह हो गयी, और वह एक अक्षर भी न लिख सका।

बुआ जागी ही थी, कि बसूने पास आकर कहा—“क्षमा, बुआजी ! मैं इस पत्रका उत्तर न लिख सका।”

और उसने पत्रको बुआजीके चरणोंपर रख दिया।

सुबह आठ बजते-बजते मनो वहाँ उपस्थित हो गयी, उसी कलके ही रूप-विन्यासमें, जैसे कलकी ही पूजाका आज दूसरा चरण हो। साथमें बसूके लिए वही उपहार—गालिबका दीवान, सूरसागर और वह गिटार।

दोनोंने एक-दूसरेको देखा। बीचमें पाँच वर्षका वियोग, भाव तथा स्थितियाँ। उस मिलनका भार बसूके लिए असह्य हो रहा था। वह और भी निष्क्रिय हो जायगा। वह कभी सूरसागर देखता। सख्य चरण—‘खेलनमें को काको गोसइयाँ।’ कभी संयोग चरण—‘बूभत श्याम कौन तुम गोरी।’ और यह विप्रलंभ—‘सधुवन तुम कत रहत हरे !’ और यह उद्धव-गोपी प्रसंग। और यह मूक राधा, जो कृष्णसे कभी नहीं ब्याही गयी, और यह कृष्ण-परिणीता रुक्मिणी।

बसू सब देख रहा था। और मनो उससे बातें कर रही थी—एक-एक शब्दमें, अधूरे वाक्योंमें, लम्बे-लम्बे वजनी मौनमें। मनो बसूको अपलक देख रही थी। बसूका सिर झुका था—जैसे मनोको देखनेका साहस ही उसमें न था। वह कभी अपनी ढीली मुट्टियोंको कसकर बाँधना चाहता था, पर मुट्टियाँ जैसे सिसककर रोने लगतीं। फिर वह अपनी हथेलियाँ देखने

लगता—सूनी, उदास हथेलियाँ। और उसकी आँखें कहीं गून्यमें टँग जातीं, किसी आतशी शीशेके चौखटोंमें बन्दी होकर तड़फड़ाने लगतीं—उस सागर-मोनकी तरह व्याकुल, जिसे उठाकर किसीने कुएँमें डाल दिया हो।

कभी वह गालिवका दीवान उलटने लगता—‘इशकपर जोर नहीं यह वह आतिश गालिव’ बसूको लग रहा था, जैसे वह सूरसागर और दीवाने-गालिवके पृष्ठोंमें धँसता जा रहा है—जहाँ सूखी जमुनाका अँधेरा कछार-ही-कछार है, जहाँ गिटारकी धुनपर कोई सिसक-सिसककर गा रहा है, ‘नुकता नौं है गमे-दिल,’ उजड़े वृन्दावनमें उड्डव कृष्णकी टूटी बाँसुरी बजा रहे हैं। ‘देखियत कालिन्दी अति कारी।’

जान-बूझकर उस सन्नाटेमें सहसा बुआजी आ गयीं।

मनोने सहारा पाकर बुआसे अपने खतका जवाब माँगा।

बुआने उत्तर दिया—“मुझसे क्या माँगती हो? साक्षात् जवाब तुम्हारे सामने है!”

मनो हँसने लगी। पीछे-पीछे बसू भी हँसा।

बुआजी चाय बनाने लगीं। सामने नाश्ता—फल, मिठाई, नमकीन।

मनोने कहा—“बुआजी, मैं कुछ नहीं खाऊँगी। चाय भी नहीं पिऊँगी।”

“क्यों?” बसूने सिर उठाया।

“अच्छा हुआ, तुमने पूछा,” मनोने कहा—“मैं क्यों खाऊँ-पिऊँ? कभी अपने-आप क्या पत्र भेजते, मेरे किसी पत्रका जवाब तक नहीं दिया!”

बुआ बोलीं—“लड़ो नहीं, भई। राधा-कृष्णमें कभी लड़ाई नहीं हुई थी!”

“उड्डव और राधामें तो हुई होगी!” मनोने उत्तर दिया।

सबको हँसी आ गयी। सारा कमरा उस हँसीसे भर गया। बसू मनोसे ज्यादा हँस रहा था। जैसे वह मनोके बराबरमें आनेका इसो बहाने प्रयत्न कर रहा हो।

“अच्छा, चलो, आज सन्धि हो जाय,” बुआने प्रस्ताव किया।

“संधि तो एक बार हुई थी, बुआजी,” बसू अवसर पाकर मुखरित हुआ—“संधि-पत्र मेरे पास अब भी है। उसमें यह निश्चय हुआ था, ‘हमारे बीच केवल भाव—केवल भाव—कभी कोई वस्तु नहीं!’ अब आप लोग यह बताइए, कि पत्र वस्तु है कि नहीं? यह गिटार, यह—”

बसूके खुले मुखमें बुआने झट मिठाईका एक टुकड़ा डाल दिया। “बस, बस! ऊधो भली करो तुम आये!”

फिर वही हँसी। पर इस बार बसूकी हँसी सिसकने-सी लगी।

बुआने फिर कहा—“अच्छा, तो मैं मान लेती हूँ, कि संधिके नियमोंका उल्लंघन मनोरमा देवीसे हुआ, और बसू, तुम अपने उसी भावपर—”

घड़ी देखनेका बहाना कर बसू एकाएक वहाँसे भाग निकला। कमरेमें जाकर बुआ उसे पकड़ ले आयीं। “आज तुम दफ्तर नहीं जा सकते।”

“मैंने लुट्टी ले रखी है, बुआ।”

“अच्छा, चलो, इसी बातपर, मनो, तुम इन्हें क्षमा कर दो।”

बुआने दोनोंके हाथ पकड़कर भक्ति-स्वरमें कहा—“मनो, आज नृत्य दिखायेगी। मेरा बसू आज पद गायेगा।”

दोनोंने नये सिरसे एक-दूसरेको देखा। मनोकी दृष्टि तरल थी, जिसमें इंद्रधनुष उगता है। बसूकी आँखें प्रकाशहीन थीं—उदासीमें डूबी हुई, जिसमें सारंगीके तार टूटते हैं।

दोपहरमें मनो नृत्य करने लगी। पैरोंमें वही घुँघरू। वही स्वप्न। वही संधि-पत्र। वही प्रतीक्षा।

बुआ और मनोके सामने माथा झुकाकर बसूने तीन दिनका अवसर माँगा। वह चौथे दिन, इतवारकी शामको अवश्य गायेगा। वह तब तक दफ्तर नहीं जायगा—भक्ति करेगा, फिरसे वर माँगेगा, रियाज करेगा। अपनेसे युद्ध करेगा—अपनेको पुनर्जन्म देगा। जो रिक्त हो गया है, मनोके संस्पर्शसे उसे भर लेगा। बुआ ठीक कहती हैं, “यथार्थ क्या है? मनुष्यसे

यह बड़ा है क्या ? कभी नहीं । भावसे बड़ा यह नहीं है ।” यह यथार्थ उसकी निजी भावुकता, निर्बलताका उद्भूत रूप है ।

“मैं सुन्दर हूँ । सुन्दरके समीप रहूँगा । उसे छू लूँगा, आँख और प्राणोंमें बसा लूँगा ।”

बसू मनोके संग रहता । गानेका रियाज करता, और सिरहाने गिटार रखकर, गालिबके दीवान और सूरसागरमें सिर गड़ाकर सो जाता ।

और वह इतवार आया ।

उस दिन दोपहरकी बसू मनोके संग एक जगह ‘क्राइसिथमम’की क्या-रियाँ देखने गया था । उसी समय कानपुरसे बसूकी पत्नी-विद्या बच्चों-सहित घर लौटी ।

बुआने बहूको मनोके आनेके विषयमें सब सूचनाएँ दे दीं । वह सब उपहार दिखाया, जो मनोने बुआ और बसूको भेंट किये थे । आज शामको बसू गायेगा । वह बहुत प्रसन्न है । इस सूचनासे विद्या बहुत पुलकित हुई ।

यात्राकी थकानके कारण विद्या कुछ खा-पीकर सो गयी । दोनों बच्चे, माला और सांतुन, घरभरमें खेलते-खेलते पिताजीके कमरेमें गये । रेशमी आसनपर धरे गिटारको देखकर उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ । सांतुन उसे ज़लट-पुलटकर देखने लगा । माला सूरसागर और गालिबका दीवान पाकर निहाल हो गयी । खूब बड़े-बड़े कागज हैं ! बड़ा अच्छा बजता है बाजा । सांतुनने पहले गिटारके तार तोड़े, फिर उसे रेलगाड़ी बनाकर इधर-उधर खींचने लगा । पुलपर गाड़ी लड़ने लगी । गिटारके दो टुकड़े हो गये । उनसे टेलीफोनका खेल शुरू हुआ ।

बुआको सहसा कुछ शोर सुनायी दिया । दौड़ी हुई कमरेमें गयीं, और वह दृश्य देखकर बुआ सिरसे पाँव तक काँप गयीं । दोनों पोथियाँ रद्दी कागजके फटे टुकड़ोंमें बदल गयी थीं । गिटार टूट-टाटकर साँस तोड़ चुका था । बुआका रोना देखकर दोनों बच्चे सहमे हुए खड़े रह गये । बुआका

सिसकना सुनकर विद्या जगी । दृश्य देखते ही वह माँ बच्चोंपर टूट पड़ी, और मारने लगी ।

उसी समय घरमें बसू आया । बच्चोंको बुरी तरह रोते सुनकर वह कमरेमें दौड़ा । विद्याके प्रहारोंके बीचसे उसने बच्चोंको छीनकर गलेसे लगा लिया । और साथ-ही-साथ उसने वह कृष्ण सत्य भी देखा ।

वैरागीकी भाँति वह बोला—“तो क्या हुआ ? सब टूट-फूट जाने दो । इसमें इन बच्चोंका क्या दोष ?”

दोनों बच्चोंको गलेसे लगाये, वह दूसरे कमरेमें चला गया । धीरे-धीरे गाता हुआ उन्हें सुलाने लगा । और दोनों बच्चे सो गये ।

विद्या बेहद दुखी थी । बुआ उदास थीं । पर बसू समदर्शीकी भाँति देखता रहा—जैसे कहीं कुछ भी न हुआ हो । जैसे रोज, नित्य-प्रति, उसी भाँति आज भी ।

बच्चे सो गये । बुआ बैठकमें उदास बैठी रह गयीं । विद्या नहानेके कमरेमें कपड़े धोने लगी ।

कुछ ही देर बाद मनो आयी—अजब साध-भरी, विजय-भाव-भरी, स्वप्न-पूरित । बुआ सामने आकर जैसे सब-कुछ ढक लेनेका प्रयत्न करने लगीं ।

“बसू कहाँ है ?” दीवानी मनो उसे ढूँढ़ने लगी ।

मनोका संग बुआजी नहीं छोड़ रही थीं । दोनों बसूके कमरेमें गयीं ।

बसू टूटे गिटारपर माथा टेके, गालिबके दीवान और सूरसागरके फटे-चिथे पृष्ठोंको अंकमें लगाये, बैठा था गुमसुम ।

और मनोको लगा, जैसे वर्तमानका पल्ला पकड़े अतीत मूर्त्त हो उठा हो—खँडहरों-सा करुण, उदास, दयनीय । मनकी दुःसह पीड़ा आँखोंमें छलक आई ।

मुख मोड़कर, बुआ आँचलसे आँखें पोंछ रही थीं ।

व्यापारी हैं जो न कभी इस तराजूकी डाँड़ी देखते हैं न खरीदारकी बेवस आँखोंके आँसू ।

फूलपुरकी लड़कियाँ जिस दिन सोलह सालकी हो जाती हैं, उसी दिनसे उनकी शादी बराबर ढूँढ़ी जाती है, और अगर उसी एक दिनके दौड़नेमें किसी लड़कीकी शादी तै हो जाती है, तो फूलपुरकी वह कुआँरी लड़की सबसे बड़ी सतवंती और भाग्यशालिनी समझी जाती है और उसका बाप या दादा-बाबा गाँवका सबसे बड़ा कुलीन और सुभागा समझा जाता है ।

चन्दाका स्थान ऐसी ही बिरली लड़कियोंमें था, और चन्दा इस मानीमें और भी किस्मतवर थी कि उसका दूल्हा बंशी सचमुच बंशोंके संगीतकी भाँति पवित्र और ऊँचा था । वह अंग्रेज़ीका दस दर्जा पास था और हज़ारों नौजवानोंमें एक था—बेहद खूबसूरत, बेतरह शरीफ़ । चन्दाके बाबाको इस शादीमें न कोई खेत रेहनपर रखना पड़ा था, न उसे किसीसे कर्ज लेना पड़ा था । पूरी शादीमें कुल इक्यावन रुपये खर्च हुए थे । नहीं तो इन फूलपुरकी लड़कियोंकी शादी.....! इस ज़लील व्यापारकी, इसके तराजूकी बात । सच, इस व्यापारमें घरके घर लुट जाते हैं, बाबा लोगोंका सर कर्जसे झुक जाता है, दो-एक बीघा हीरा जैमी धरती महाजनके नाम लिख उठती है ।

वैसे फूलपुर गाँव अपनी स्थिति और रूपमें बेहद हसीन था । नीचे सरजू नदीका उम्दा छोर, उसके बाद नदीका कँकरीला ऊँचा कगार और कगारपर गोल-सा गाँव । गाँवके परे जंगली फूलोंकी झाड़ियाँ और इसके परे गाँवकी जवान धरती और लहलहाते हुए खेत ।

आजसे दो वर्ष पहले जब बंशी दूल्हा बनकर इस गाँवमें आया था, तब उसे गाँवकी लड़कियोंके साथ शादीकी रातके भोरमें सरजू नदीकी धारको अपना माथा टेकना पड़ा था ।

इसके अलावा बंशीको उस शादीकी रातको बहुत-से और रीति-रिवाजोंको बरतना पड़ा था और हर रस्ममें उसकी दूल्हन चन्दा भी उसके पहलूसे बँधी हुई थी, लेकिन फिर भी बंशी चन्दाको नहीं देख सका था । द्वारपूजाके

वही चाँद और काँटे

फूलपुर गाँवमें बाली सबसे खूबसूरत लड़की थी, और उसकी बड़ी बहन चन्दा उस गाँवकी सारी लड़कियोंमें सबसे ज्यादा किस्मतवर थी । क्योंकि जिस दिन उसके बाबा उसकी शादी ढूँढ़ने निकले, उसी दिन अपने गाँवसे उत्तरकी ओर सात कोस पैदल चलकर उन्होंने चन्दाकी शादी तै कर ली थी । इसीलिए चन्दा उस गाँवकी सबसे किस्मतवर लड़की सिद्ध हुई थी, क्योंकि फूलपुर गाँवमें लड़कियोंकी किस्मत उनके व्याह ढूँढ़ने और तै होनेके आधारपर तौली जाती थी और यह एक ऐसा जालिम तराजू था कि इसपर मुश्किलसे कोई लड़की पूरी उतरती थी । क्योंकि एक तो यह तराजू वर्षोंका पुराना है, इसकी डाँड़ी और डोर इस तरह पुरानी और मैली हो गई है कि इसे देखते ही किसी बूचरखानेकी तराजू याद आती है जिसपर खूनके धब्बे लगे होते हैं फिर भी यह हर रोज कटे हुए मांसके तौलनेमें इस्तेमाल किया जाता है । दूसरे इस तराजूके उठानेवाले भी वे अन्धे

वक्त, मड़वेमें सुहागदानके समय, कोहबरमें दीपदानके समय, चौकेमें जुआ खेलनेके अवसरपर अपनी दूल्हन चन्दाको देखनेका भरसक प्रयत्न करके हार चुका था और वह कहींसे भी चन्दाको न देख सका था। क्योंकि फूलपुरके इन घरोंमें इतना पर्दा होता है कि इन घरोंमें बाप-भाइयोंके अलावा अगर कोई और पुरुष प्रवेश पाता है तो वह घरका दूल्हा ही होता है। यही कारण है कि जब कभी भी इन घरोंमें कोई दूल्हा आता है तो इस गाँवकी सारी लड़कियाँ उसे देखनेके लिए पागल हो जाती हैं, और जबतक वह दूल्हा इस गाँवके किसी भी घरमें रहता है ये लड़कियाँ उसे चौबीसों घण्टे घेरे खड़ी रहती हैं। और जो लड़की अपने जीवनमें पहली बार किसी दूल्हेको देखती है वह समझ लेती है कि दुनियामें उस दूल्हेसे बढ़कर और कोई न होगा। और यह बात उसके दिमागमें तबतक घर किये रहती है जबतक वह किसी और दूल्हेको नहीं देख लेती।

बाली इन्हीं मासूम और भोली लड़कियोंमें थी, जिसकी कुँआरी आँखोंमें सबसे पहले बंशीकी छाया पड़ी थी। उस समय बाली चौदह सालकी थी और सोलह सालतक आते-आते उसने अपने गाँवके घरोंमें कमसे-कम बीसों दूल्होंको देखा था, लेकिन बंशी उसके मनमें, दिमागमें, कल्पनामें और इससे भी दूर चला गया था। उसको विश्वास हो गया था कि बंशी ऐसे नौजवान तमाम गाँवोंमें होंगे और सब इतनी ही सुगमतासे प्राप्य हैं।

ब्याह-गौनाके बाद बंशी तीसरी बार फूलपुरमें आमन्त्रित किया गया। इस बार चन्दाके बाबाने भागवत सुनी थी और यज्ञ-समारोहमें बंशी बुलाया गया था। बंशी उस समय एक० ए० के दूसरे सालमें पढ़ रहा था और खूब बन-ठनके ससुराल आया था। वह जिस समय ससुरालके दरवाजेपर पहुँचा और सबसे रामराम-नमस्ते आदि कर ही रहा था कि उसने अनुभव किया कि भीतरसे कोई लड़की बहुत तेजीसे दौड़ती हुई बाहरी दरवाजेपर आकर एकाएक रुक गयी है और दरवाजेकी दायीं किवाड़ सहसा तिर्छी हो गयी है, फिर बंशीने जब उस तिर्छी किवाड़की ओर देखा तब उसे क्षणभरमें लगा कि

वह पिछले ही वर्षका दूल्हा है और चन्दाका गौना लेने आया है। चाँदनी रात है। ऊपर आँगनके बीचोबीच चाँद रुका हुआ है और बंशी मड़वेके नीचे बैठा है। वह चाँदनी भरा आँगन, वह शोख बाली, वह घूँघुरोंके ताल, वह गीत, वह शरारत भरी नज़रें, वे टेढ़ी-टेढ़ी परछाइयाँ, वह झुका हुआ सितारों भरा आसमान जैसे एकाएक सब एकमें मिलकर उस तिर्छी किवाड़के परेसे शोर मचाने लगे हों कि यहाँ वाली खड़ी है! यहाँ बाली छिपी हुई तुम्हें देख रही है।

उसी रातको जब चन्दाके बाबाको यज्ञके कामसे छुट्टी मिली, वे असीम स्नेहसे बंशीके पास बैठे और बार-बार बंशीके पैर छूने लगे। बंशी घबरा रहा था और बाबा अपनी दीनतामें कह रहे थे : "बेटा ! अब तो बालीके सोलह वर्ष बीते। आज आठ महीने बीत गये, मैं इन आठ महीनोंमें कितनी जगह घूम-घूमकर उसके लिए वर ढूँढ़ रहा हूँ, लेकिन जहाँ घर है वहाँ वर नहीं, और जहाँ थोड़ा-सा है भी वहाँ हज़ारोंके मोलभाव हैं। बेटा ! लेकिन मैं तो सिर्फ बालीका वर ढूँढ़ रहा हूँ, और कुछ नहीं। मुझे केवल उसके योग्य वर चाहिए और न घर न जायदाद। अच्छे वरके साथ मेरी बेटी जंगलमें भी सुखसे दिन काट लेगी, नहीं तो... बेटा ! अब तक कोई वर मुझे नहीं मिला। बेटा ! मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ; तुम्हीं कहीं अपने मित्रों, साथियों या जान-पहचानमें उसके योग्य वर ढूँढ़ दो। मैंने अपने कानों सुना है बेटा ! पगली बाली एक दिन अपनी एक सखीसे अजीब बात कर रही थी। उसे न जाने कैसे और क्यों विश्वास हुआ है कि तुम्हारे ही ऐसे पढ़े-लिखे और अच्छे ऊँचे खयालोंके लड़के इन तमाम गाँवोंमें भरे पड़े हैं और वे इतने आसान भी हैं जिस तरह तुम मेरी बेटी चन्दाके लिए आसान थे। पगलीको मालूम नहीं कि सबकी क्रिस्मत एक ही तरह नहीं होती। तुम्हारे लिए चन्दाने अपने पूर्व जन्ममें न जानें कितनी तपस्या की होगी। उसे ये बातें कहाँ मालूम; वह तो निरी पगली है पगली ! हँसती है तो बस हँसती ही रह जाती है और अब तक तो गुड़िया खेलती है। इतनी खतरनाक नदी सरजूमें

छिप-छिपकर गोता लगाती है, किस्ती तैराती है, अजीब लड़की है। मुझे तो इसे देखकर रोनेकी तन्वीयत होती है। यह फूलपुर गाँवमें क्यों पैदा हुई? इसे किसी सेठ-साहूकार या राजा-मझाराजाको लड़की होनी चाहिए थी। लेकिन खैर, बताओ बेटा, अब क्या कहूँ, मुझे जहाँ-जहाँ बताओ, मैं वहाँ-वहाँ दौड़ूँ और जल्दीसे इसके भी पाँव पूज दूँ !”

और दूसरी रातको जब बंशी खाना खाकर आंगनके वरामदेसे बाहर दरवाजेपर जा रहा था, वालीने अँधेरेमें उसे रोककर बहुत धीमी आवाजमें समझाते हुए कहा : “मालूम है, कि बम सोना ही जानते हो? इस गाँवके मेहमानको हर एक रात सोनेके लिए नहीं दी जाती। उसे कम-से-कम एक चाँदकी रातमें जागना पड़ता है।” फिर वालीने बंशीसे तै कर लिया कि वह अभी सरजू नदीके किनारे चलेगा और फिर किस्तीपर बैठकर वे दोनों चाँदनीमें भीगी हुई सरजूकी लहरें देखेंगे।

बंशी थोड़ी देरमें जैसे ही नदीके घाटपर पहुँचा, उसने देखा कि निर्भय वाली कछेलेपर बैठी हुई डाँड़से नदीकी लहरोंको पीटती हुई असीम प्यार और अपनत्वसे कह रही है : “पहुना, आ जाओ, जल्दी आ जाओ; देखो मैं कबसे तुम्हारी राह देख रही हूँ।” और जब इतनेपर भी बंशी डरा हुआ घाट ही पर खड़ा रहा, वालीने फौरन अपनी किस्तीको किनारकी जमीनपर टिका दिया और दौड़कर बंशीको पकड़ अपनी किस्तीकी ओर खींचती हुई कहने लगी : “डरो नहीं भले आदमी ! नहीं तो मैं अभी तुम्हें अपना दुपट्टा पहना दूँगी। हाँ, देखो मैं नहीं डर रही हूँ और गंगा मझासे क्या डर ! यह तो पूरे गाँवकी मझा है। हम लोग इनकी पूजा करते हैं और ये हमारी रक्षा करती हैं। ये मझा हैं और मैं इनकी बेटा हूँ और तुम तो इनके पहुना हुए, हुए न !.....फिर.....और तुम तो मेरे.....!” यह कहती-कहती, वाली बंशीके साथ कछेलेपर बैठ गई और सामने बंशीको पूरी नजरोंसे देखती हुई मुसकराने लगी। बंशीने चारों ओर एक नजरमें देखा, नीचे सरजूकी छोटी-छोटी चंचल लहरें, किनारे लहरोंका सफ़ेद

गाज; सामने बालीकी परछाइयाँ, चारों ओर दूधिया चाँदनी और ऊपर जादूगर चाँद।

बंशी चुप था और बाली किस्तीको तेजीसे धारकी ओर बढ़ाने लगी, लेकिन दूसरे ही क्षण बंशीकी घबराहट और डरको देखकर उसने हँसते हुए पूछा : “पहुना, तुम्हें धार पसन्द है या किनारा ?.....”

“नहीं किनारा !” यह कहते हुए बंशीको लगा जैसे वह कोई बच्चा है जो अपनी कमजोरियोंको अपनी माँसे कह रहा हो। और वालीकी सरल हँसीकी लहरोंमें जैसे यह बात साफ़ उभर आयी थी कि मैं तो इस गाँवकी कुँवारी लड़की हूँ, सूनी चाँदनी रात भी है, अकेले तुम्हारे साथ भी हूँ, तुम मुझे प्यारे भी हो, फिर भी मुझे नदीकी धार पसन्द है; किनारेपर तो मेरा घर ही है और नदीका किनारा कितना स्थिर है, कितने सहारोंसे बना है !

बंशीको लिये हुए बालीकी किस्ती अब नदीके किनारे-किनारे चल रही थी। किनारेपर बहाव क्रतई न था, इसलिए किस्तीकी चाल तेज थी। एका-एक वालीने फिर हँसते हुए पूछा : “तुम्हें बहाव पसन्द है या चढ़ाव ?” सवाल बहुत टेढ़ा न था, लेकिन बंशीने इसे वालीकी शरारत समझकर स्वयं इसे टेढ़ा बना लिया और देर तक मुसकराता हुआ सोचने लगा। उधर बाली हँसती रही, पानीमें डाँड़को पीटती रही, बंशी तक पानीके छींटे उछालती रही : “तुम कैसे हो ! इतना शरमाते हो कि नयी दुल्हन क्या शरमायेगी। हरदम घबराहट, हरदम डर, जैसे इन्हें कोई लेकर भाग जायगा। गुलाबी दीदीका देवर जो है, मुँहजोर अभी अंग्रेजीकी आठवें ही दर्जेमें पढ़ता है लेकिन कलमुँहा छुरा है छुरा.....दुनियाको चरा लाये। इती छोटी उमरमें अजीब-अजीब बातें करता है। और एक तुम हो पाँच हाथके जवान, अंग्रेजीके बारह दर्जेमें पढ़नेवाले; जवान ही नहीं हिलतो जैसे इनकी बहन चोरी चली गई हो !.....” यह कहकर बालीने अपने मुँहको घुटनोंमें छिपा लिया। फिर बंशीने धीरेसे जवाब दिया : “और अगर नदीमें बहाव न हो तो ?”

बालीके इस नये प्रश्नके साथ-ही-साथ उसकी किस्ती भी रुक गई; उसकी शरारत भी रुक गई। इस बार एक ही क्षणके बाद बंशीने उत्तर दिया : “ऐसी सूरतमें किस्तीको उसकी ही मर्जीपर छोड़ देनी चाहिए और वह स्वयं अपना बहाव ढूँढ़ लेगी।” इस उत्तरसे बाली न जाने क्यों शरमा गई; जैसे वह हार गई हो। लेकिन दूसरे ही क्षण वह किस्तीको विलकुल स्वतन्त्र छोड़कर बंशीसे विलकुल सटकर बैठ गई और चुप होकर नीचे देखने लगी। लेकिन वह नीचे देखती हुई न तो किस्तीके पानीमें चाँदको देख रही थी, न अपनी परछाईको, वरन् वह बंशीके दामनमें बैठकर एक अजीब-सा स्वप्न देखने लगी थी—उसकी शादी पढ़ना जैसे ही वरसे हो रही है, वह उसके दामनसे लगी हुई दुल्हन बनी बैठी है और उसके बाबा मड़वेमें खुशीसे फूले नहीं समा रहे हैं। लोगोंसे बातें कर रहे हैं कि मेरी बाली भी कितनी बड़ी किस्मत लेकर आयी थी, इमने भी अपने सुहागके लिए कितनी तपस्या की थी ! और आँगन-भरकी सखियाँ और औरतें उसकी बलैया ले रही हैं—जैसे सखीका रूप, वैसे ही सखीका भाग्य; जैसे बंटीका रूप वैसे ही सुहाग....

किस्ती बहाव ढूँढ़ती हुई धीरे-धीरे पीछेकी ओर खिसकने लगी थी और बाली अब तक सर झुकाये हुए चुप थी। न जाने क्यों इतनी वाचाल, इतनी चंचल बालीकी उस समय इच्छा हो रही थी कि वह उसी तरह सर झुकाये हुए सारी रात बंशीके पास बैठी रहे, और बंशी उसे सारी रात मनाये—अच्छी-अच्छी कहानियाँ कहकर, अपनी ही तरह और तमाम लड़कोंकी बातें कह-कहकर; अच्छी-अच्छी शादियोंकी बातें, प्रेमकी बातें, खेल-कूद-हँसी-गानेकी बातें। फिर वह सारी रात इसी तरह रूठी रहे, निगाहें नीची किये हुए मुसकराती रहे। फिर भोर हो जाय और सूरजकी पहली किरन उसकी थकी हुई निगाहोंको सहारा दे और वह उसी किरनकी डोरसे झूलती हुई उस जगहपर पहुँच जाय, जहाँ बंशीकी ही भाँति उसका अनदेखा परदेशी अंग्रेजीकी बारहवीं जमातमें पढ़ रहा हो।

लेकिन थोड़ी ही देरमें इस स्वप्नसे उसके सीनेकी साँसें गर्म होकर फूलने लगीं और उसे लगने लगा कि वह किस्तीसे दौड़ती हुई सरजू नदीकी धारपर बढ़ती चली जा रही है। और बालीने एकाएक अपना सर बंशीके बाजूपर टिका दिया और तेज साँसें लेने लगी। क्या है ? बंशीके यह पूछते ही बालीने अपना दायाँ हाथ उसकी गोदमें डाल दिया—मेरा हाथ देखो। बंशीको बालीका हठ मालूम था, वह उसके सारे बचपनको जानता था; इसलिए उसे कुछ कहना ही पड़ा : “बहुत अच्छी रेखाएँ हैं; बड़ी किस्मतवालीको ही ये रेखाएँ मिलती हैं; सच, तुम्हें तो तुम्हारी चन्दा दीदीसे भी बढ़कर दूल्हा मिलेगा—देखना। “धत्—” कहते हुए बालीने अपना हाथ तेजीसे खींच लिया और अपने मुँहको बहुत देर तक घुटनोंके बीच छिपाये रही। और कुछ क्षणोंके बाद उसने फिर अपना दायाँ हाथ बंशीके हाँथोंमें सौंप दिया—“देखो, देखो मेरी हथेली और कलाईमें कितनी ताकत है ! देखो और दबाओ....खूब कसके दबाओ न !” फिर बालीने अपनी परीक्षा देनेके लिए स्वयं अपने बायें हाथसे दायाँ कलाईको जोरसे दबा दिया और बंशीको दिखाने लगी कि उसकी कलाईके चारों ओर उसकी उँगलियोंसे कितना खूबसूरत गहरा दबा हुआ पूरा गोल निशान बन गया है। और बंशी उस कुँआरी फूल ऐसी हथेलीको लिये हुए मेंहदीके रंग और हल्दीकी खुशबूको महसूस करने लगा। उसे बालीके ब्याहकी लाल-सुहाग भरी चुनरी याद आने लगी। वही याद धीरे-धीरे स्नेह बन गया, पूजा बन गई और सहसा बंशीका सर नीचे झुक गया। किस्ती धीरे-धीरे स्वयं बह रही थी, और चारो ओर खामोशी थी—चाँदकी ओरसे भी, चाँदनीकी ओरसे भी, सूने गाँव और सरजूकी धार और इसके कगारकी भी ओरसे। किस्ती बहती-बहती कगारसे टकराई, दोनोंको धक्का लगा, बालीका सर उसकी गोदमें आ गिरा और बंशीने उसे सँभाल लिया। और उसे उसी तरह सँभाले हुए धीरे-धीरे किस्तीसे किनारे धरतीपर उतारने लगा।

बंशी बी० ए० पास करके अपने ही जिलेमें एक स्थानीय अंग्रेजी स्कूल-में अध्यापनका कार्य करने लगा। स्कूलकी तरफसे उसे कुल अस्सी रुपये मिलते थे; जिसे वह महीनेकी पहली तारीखको पूराका-पूरा अपने घर भेज देता था। अपने खर्चके लिए वह पन्द्रह-पन्द्रह रुपयेके दो ट्यूशन करता था। एक कचहरीके पेशकारके लड़केका ट्यूशन; दूसरा एक मारवाड़ीकी लड़कीका। पेशकारका लड़का सुबह सात बजे उसके क्वार्टरपर ही पढ़ने आता था और बंशी उसे प्रायः नौ बजे तक पढ़ाता था। उसे पन्द्रह रुपयेमें बंशी दो घण्टे समय इस वजहसे देता था कि वह स्वयं बरामदेमें एक कोनेमें चौका जलाकर अपना खाना बनाता था और उसे पढ़ाया भी करता था। दस वजे वह स्कूल चला जाया करता था और पाँच बजे तक लगातार स्कूल-में ड्यूटी देता था। और वहीसे वह सीधे मारवाड़ीके घर चला जाया करता था और साढ़े पाँच बजेसे आठ बजे रात तक उसकी लड़की रत्नाको पढ़ाया करता था। पन्द्रह रुपयेमें बंशी रत्नाको ढाई घण्टे इसलिए पढ़ाता था कि रत्नाके पिता सेठ हीरामल उसके स्कूलके मन्त्री थे और बंशीको उस स्कूलमें नौकरी इन्हींकी कृपासे मिली थी। रातके साढ़े आठ बजे क्वार्टरपर लौटकर वह फिर बरामदेमें खाना बनाने लगता था और खाना बनाते समय वह चुपचाप आगकी लौकी रोशनी देखा करता था। यह उसकी आदत पड़ गई थी, इसीलिए खाना बनाते समय वह कोई चिराग नहीं जलाता था, और एक मिट्टीका चिराग जलाता भी था तो उस समय जब वह खाना खा चुकता था और वह बन्द कमरेमें सोने लगता। वह इस चिरागको तब तक देखता जब तक वह स्वयं जलकर बुझ न जाये। फिर वह धीरे-धीरे सो जाता था; लेकिन सोता भी था तो कैसे?—तंगी खाटपर, जिसके सिरहाने बंशीका उम्दा गद्देदार बिस्तर गोल मसनदकी भाँति लपेटा हुआ रक्खा रहता था। बंशी चिरागकी लौ बुझनेके बाद अक्सर कुछ धुँएकी तरह अस्पष्ट शकलमें न जाने क्या-क्या सोचता तथा उसी तरह वह चारपाईपर पीछे बिस्तरसे पीठ टिकाये और घुटनोंके बीच अपना मुँह छिपाये या कभी गोल बिस्तरपर औंधा लेटकर

या नर्म बिस्तरमें अपना मुँह गड़ाये या कभी उस समूचे गोल बिस्तरको अपनी बाहुओंमें कसे हुए सो जाता था। इसका खाना-पीना, रहना, चुप रहना, सोना वगैरह सब अजीब हो गया था। जैसे उसके जीवनके चौबीस घण्टे एक सूनसान विस्तृत रेगिस्तानकी अकेली यात्राकी भाँति हो गये थे—बेमतलबकी यात्रा—लक्ष्यहीन; जिसकी कोई मंजिल न हो, कोई इच्छा न हो। बंशीको ऐसा क्यों हो गया? क्या बात है? इसका वह कोई कारण ही नहीं ढूँढ पाता था।

लेकिन यह सब क्यों, कैसे, किसलिए, इसके उत्तरके लिए वह आत्म-विश्लेषण करके हार चुका था। वह अपने सामने स्वयं तमाम प्रश्न रखता और स्वयं ईमानदारीसे उसके उत्तर ढूँढता और देता। क्या वह किसीसे प्रेम करता है—अव्यक्त, असफल या कुण्ठित प्रेम? नहीं कर्त्तई नहीं, क्योंकि प्रेम करनेके समयके पूर्व ही उसकी शादी हो गई थी और वह प्रेमी बननेके बहुत ही पहले पति बन गया था। कोई अतृप्त वासना? नहीं, चन्दासे अब इस दिशाकी उसकी सारी भूख मिट चुकी थी। तो पिछले वर्ष चन्दाकी एका-एक मौतकी कष्टना तो नहीं? नहीं, चन्दा मुसकराती हुई स्वर्ग गई थी इसलिए उसकी मौतमें शान्ति थी। कोई विरह वेदना?....नहीं चन्दा अपनी एक खूबसूरत अमानत बीनू एक वर्षके बच्चेके रूपमें छोड़ गई है। तो क्या है? उसे पुनर्विवाहकी इच्छा तो नहीं?....नहीं, नहीं कभी नहीं। फिर?.... नहीं। फिर?....नहीं।

इस तरह बंशी चौबीस घंटे इसी 'फिर' 'नहीं'के धुँएसे घुटा जा रहा था और इस जहरीले धुँएसे बचनेके लिए उसके पास केवल दो साधन थे—आगकी लौको देखना और अपनेको बेहद व्यस्त रखना, शक्तिके ऊपर काम करके अपनेको थकानसे चूर-चूर कर देना।

उस रातको जब मिट्टीका चिराग जलते-जलते बुझने ही वाला था, बाहर बरामदेमें किसीकी पुकारनेकी तेज आवाज आई। सामने देखा—

तारवाला पूछ रहा है : “बाबू बंशीधर आप ही हैं ?” बंशी चुप था; वह उसे क्या उत्तर दे ? वह सोच ही रहा था कि तारवालेने तारका लिफाफा बंशीको पकड़ा दिया। बंशीने लिफाफा खोला—तार था : “बाली डाइंग, कम इमिडियेटली”। भेजनेवालेका पता था “बाली, वार्ड नं० २; मेडिकल कालेज लखनऊ।” बंशी चुप था, बेहद शून्य और उसकी फटी-फटी नजर उसी तरह चिरागकी लौसे चिपक गई। उस लौमें कुँआरी बाली—चंचल, शोख, बेहद हसीन बाली खड़ी थी; उसके शरीरका रेशा-रेशा कुँआरा था। बंशी उसका कुँआरा हाथ देखता हुआ कह रहा है : “तुम बड़ी किस्मतवर हो बाली। तुम्हें चन्दासे भी बढ़कर वर मिलेगा।” फिर बालीने अपना मुख चेहरा अपने घुटनोंमें छिपा लिया। ढोलक बजे, उन कुँआरे हाथोंमें मेहदी रचाई गई, फिर बालीकी शादी हुई—एक मिडिल पास लड़केके साथ; फिर भी उसके बाबाको एक बीघा खेत रेहन रखना ही पड़ा; क्योंकि वारात एक बड़े जमींदारके घरसे आई थी। बालीने अपनी शादीमें बंशीको बहुतेरा बुलाया था, बहुत मनुहार की थी, क्रसमें धराई थी, लेकिन बंशी उसकी शादीमें नहीं गया। क्योंकि उसे लगा था कि बाली कोई खूबसूरत स्वप्न थी, जो टूट गई; और उसके टूटनेकी जिम्मेदारी बंशी अपने ऊपर ले रहा था। चन्दाके स्वर्गवासके बाद उसे एक बार बालीकी याद फिर आई थी; लेकिन उसने उस यादको चन्दाकी यादमें भुला दिया था; जैसे वह भी दिवंगता हो गई हो। और आज पूरे दो वर्षोंके बीचमें न कोई पत्र, न कोई संदेश, न कोई उलाहना या मनुहार; और आज एकाएक यह तार : बाली डाइंग, कम इमिडियेटली।

बंशीने तारको फिरसे पढ़ा और उसे चिरागकी लौमें देखता हुआ बुद-बुदाया—तो बाली अब तक जीवित है ? लेकिन क्यों और कैसे जीवित है ? चन्दा तो इतनी खुश थी, इतनी सन्तुष्ट थी, फिर भी इतनी जल्दी मर गई; लेकिन बाली ?...बाली कैसे जीवित है ? लेकिन जीवित कहाँ है ? अपने मरनेके कुछ ही समय तो पहले उसने मुझे यह तार दिया होगा। वह अब

तक मर चुकी होगी और उसने मुझे यह सज्ञा दी है कि मैं उसका जिन्दा मुँह तक न देख सकूँ। उसने मुझे अपनी अर्थी उठवानेके लिए बुलाया है; उसकी पत्थरकी तरह खुली हुई आँखोंको मैं ही ढकूँगा; क्योंकि वे आँखें मुझसे फिर वही फरियाद करनेके लिए खुली होंगी : “पहुना, मेरा हाथ देखो, मेरी किस्मतकी रेखा बता दो, मेरा....”।”

और धीरे-धीरे मिट्टीका चिराग बुझ गया और इधर सुबह होनेको आई। बंशी सुबहके मेलसे लखनऊ पहुँचा। शाम हो गई थी, वार्डके बाहर-भीतर विजलीकी रोशनी हो रही थी; और बंशी बाहर ही खड़ा इधर-उधर कुछ ढूँढ रहा था। कुछ क्षणोंके बाद उसके सामनेसे ही एक भद्दा लेकिन सीधासादा गाँवका नौजवान सर झुकाये हुए, गुजर रहा था। बंशीने उसे पुकारकर पूछा : “यहाँ नंबर दोका वार्ड कौन है ?” नौजवानने बंशीको जिज्ञामु नेत्रोंसे देखा और उसने पूछा : “आप किससे मिलना चाहते हैं ?” बंशीने सोचते हुए उत्तर दिया : “बाबू रामनरेश और उनकी धर्मपत्नी बालीसे।” नौजवान एकटक उसको देखता रहा, मानो बाली द्वारा वर्षोंसे सराहे हुए किसी अपरिचित बंशीके रूपको वह उसीमें देखने लगा था।

बंशीने फिर कहा : “बताइए मैं जल्दी वार्ड नम्बर दोमें जाना चाहता हूँ।”

फिर एकाएक युवकने बंशीके दोनों हाथोंको अपने दामनमें खींच लिया और उससे बच्चोंकी तरह लिपट गया। स्नेह-करुणासे उसका कण्ठ भर आया था और बंशीको पाकर वह इतना विकल हो गया कि उसे लगता था वह बंशीके पैरोंसे लिपट जाय, बंशीके सामने फूट-फूटकर रोये। युवकने बंशीके दायें हाथको पकड़कर कहा : “मैं ही बालीका पति रामनरेश हूँ। मैं यहाँके एक डिपोमें पचास रुपयेपर नौकरी करता हूँ....और....”

“और बाली ?” बंशीने तड़पकर पूछा।

नरेश चुप था। उसकी आँखें डबडबा आई थीं। बंशीने फिर उसके दोनों गिरे हुए कंधोंको मजबूतीसे हिलाते हुए कहा : “बाली जरूर कुशलसे

होगी—क्योंकि उसीने मुझे यह व्यक्तिगत तार दिया है—यह देखो तार, और बालीका नाम ।” नरेश अब और उदास हो गया था, उसने कहा : “नहीं बंशी बाबू ! आपको यह तार मैंने दिया है—बालीकी तरफसे । इसे बाली नहीं जानती; तार भेजनेकी कोई बात तक नहीं जानती । मैं आपसे हाथ जोड़ता हूँ कि आप उससे इस तारकी चर्चा कतई न कीजिएगा । आप उससे मिलनेपर बस यही कहिएगा : ‘बाली, मुझे अपने-आप पता हो गया कि तुम सख्त बीमार हो, और मैं तुम्हारे पास भागा चला आ रहा हूँ ।’ सच, आप इसी तरह बालीसे कहिएगा नहीं तो उसका हृदय टूट जायगा । मुझसे जबसे उसकी शादी हुई है, वह दिन-रात बस आपकी बात किया करती है, अपनी दीदी चन्दाकी बातें करती है, अपने गांवकी बातें करती रहती है, लेकिन वह जितनी आपकी बातें करती जाती है, उतना ही आपसे रूठती भी गई है । वह कहती है कि वह मेरी शादीमें नहीं आये, चन्दा दीदीकी बीमारीमें हमें नहीं लिखा, उसके स्वर्गवास तककी खबर न दी । हमें पराया समझ लिया, फिर मैं रूठूँ क्यों न ? फिर भी वह चौबीस घण्टे आपकी बातें करती रही और न जाने क्यों वह व्याहके दिनसे ही उदास, खोई-खोई और चुप रहने लगी । वह हँसती है लेकिन न जाने कैसी हँसती है रूठी-रूठी—मानो उसे दुनियासे रंज है । वह बीमार रहने लगी और उसे हमेशा मीठा-मीठा बुखार रहने लगा । डाक्टर उसे सलाह देते हैं कि वह खुश रहे, हँसे; तब वह बच्चोंकी भाँति मुझसे पूछती है कि ‘मैं क्या करूँ, खुश हूँ तो हूँ और कैसे खुश रहा जाता है ।’ और इधर उसे सूखी खाँसी भी आने लगी है और उसकी तबीयत बेहद खराब हो गई है । मैं उससे हफ्तोंसे कह रहा हूँ कि मैं आपको तार देकर बुला लूँ, लेकिन वह कहती थी कि नहीं, मैं अपनी तरफसे उन्हें कभी तार न दूँगी; उन्हें आना होगा तो वे खुद आयेंगे । और फिर तो जब मेरी तबीयत सचमुच बहुत खराब हो जायगी; तब उन्हें खुद इसका पता आप-ही-आप हो जायगा और देखना, वे स्वयं चले आयेंगे ।”

नरेश धीरे-धीरे बंशीको समझाता रहा और उसके हाथको पकड़े हुए वार्ड नम्बर दोकी ओर बढ़ता गया । वार्डके बरामदेमें पहुँचकर नरेशने बहुत धीमी आवाजमें बंशीसे कहा : “अन्दर जाइए...बाली वहीं सो रही है ।” यह कहकर नरेश दूर हट गया । लेकिन बंशी वहीं खड़ा रहा । उसे लगता था कि उसके पैर झूठे हैं, वह झूठा है । वह बरामदेमें खड़ा रहा और सहसा उसके कानोंमें बालीकी सूखी खाँसीकी लहरें टकराने लगीं । खाँसीकी ये लहरें उतनी ही तेज और लम्बी थीं जिस तरह फूलपुरमें उसकी हँसीकी लहरें हुआ करती थीं । जैसे उन हँसियोंके ही प्रायश्चित रूपमें उसे यह खाँसी मिली थी । वह हँसीका संगीत यह खाँसीकी मनहूसिम्रत ।

बंशी धीरे-धीरे भीतर गया—भीतर चलता गया और भीतर बरामदेमें बालीकी खाटके पैताने खड़ा हो गया । गर्मीके दिन थे, चाँदनी रात थी, और बाली—किशतीसे सरजू नदीकी धारमें बेतरह गोता लगानेवाली, घण्टों हँसनेवाली—बुरी तरह चट्टसे मुँह ढँके हुए भीतर-ही-भीतर खाँस रही थी; बंशीने सहसा अपना माथा बालीके पैरोंसे जकड़ लिया—और गिड़-गिड़ाने लगा : “बंशीको माफ़ कर दो बाली ! मुझे माफ़ कर दो !”

बाली एकाएक उठ बैठी और चुपचाप अपलक सूखी उदास, भरी हुई नज़रोंसे बंशीको देखने लगी । मानो उसे अब कुछ नहीं कहना था । अप-राधीकी भाँति बंशीका सर झुका था । बालीका जो हल्का होता जा रहा था; उसके प्राणोंपर रक्खा हुआ बोझ धीरे-धीरे उतरने लगा, उसके फेफड़ेका कड़ा धुआँ, भीतरका सारा तनाव धीरे-धीरे ढीला होता गया और उसकी आँखोंसे आँसू बरसते गये । फिर उसकी आँखोंका आसमान साफ़ होता गया । उसने देखा, बंशी सामने सर झुकाये बैठा है, चाँद आसमानमें अब भी निकलता है, चाँदनी आज भी आँगनमें जवान है ।

दोनों चुप थे; लेकिन दोनों न चाहते हुए भी रो रहे थे और उन्हें सम-जानेवाला वहाँ कोई तीसरा न था । बंशी जब बालीकी ओर नज़र उठाता तब बाली सर झुका लेती, और जब बाली बंशीको देखने लगती तब बंशीका

सर झुक जाता, जैसे उन दोनोंकी नज़रोंमें एक दूसरेको देखनेकी ताकत न थी। बाली मुसकराई, अजीब कड़ुई मुसकराहट और उसकी मुसकराहट लम्बी होकर सूख-सी गई और उसके पतले-पतले सूखे होंठ अनायास ही हिलने लगे—जैसे रोनके पहले होंठोंमें लहरें उठती हैं उसी तरह बालीके होंठ यह कहनेके लिए हिलने लगे : “आराम...आराम तो मैं कर ही रही हूँ; एक पचास रुपयेका डिपोका नौकर अगर अपनी बीमार पत्नीको मेडिकल कालेजके वार्डमें टिकाये, तो इससे बढ़कर उसकी पत्नीकी और क्या क्रिमत हो सकती है। इतना पत्नीव्रती पति किसे मिलेगा; मुझे आराम और सुख देनेके लिए उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं किया, गाँवसे शहर लाये, मुझे अच्छे-अच्छे कपड़े, श्रृंगार और भोजन दिया, खेल-तमाशे दिखाये—लेकिन फिर भी मुझे देखो मैं बीमार हूँ—आराम ही से बीमार हूँ। सारे डाक्टर, दुनियाके सारे आदमी गलत कहते हैं कि मुझे आराम चाहिए; मुझे आराम नहीं चाहिए, मुझे न जाने क्या चाहिए!” दूसरे दिस वे लोग अपने क्वार्टर चले आये।

बालीने जबरन आँगनकी खाटपर बिस्तर बिछा दिया और बंशीको प्यारसे पकड़कर उसपर बिठा दिया और बंशीके लिए जलपान रखकर स्वयं उसके सामने बैठ गई। बंशी जलपान करने लगा और बाली सर झुकाये कहने लगी : मैं तुमसे रूठी थी, पर अब खुश हो गई हूँ। मुझे विश्वास था कि तुम मेरी बीमारीमें स्वयं जरूर आओगे। तुम्हें खुद इसका पता हो जायगा। तुम अब आ गये, मैं खुश हो गई हूँ और देखो अब मैं अच्छी हो गई हूँ।”

यह कहते-कहते बाली बच्चोंकी भाँति खिसकती हुई बंशीकी गोदमें अपना सर छिपाकर लेट गई और कहने लगी : “पहुना, तुम्हें फूलपुर याद है न?—वह सरजू नदी, वह चाँदनी रात, वह बहावकी खोजमें छूटी हुई किशती!”

“याद है!”

“जरूर याद होगा, याद है न! उस रातको तुमने मेरा हाथ देखा था। सच, मैं उसी चाँदनी रातमें तुम्हारी गोदमें इसी तरह सो जाना चाहती थी—पर...लेकिन देखो आज भी वही चाँद है, वही चाँदनी है, वही तुम हो, वही मैं हूँ—सुहागन हो गई हूँ तो क्या?” यह कहते-कहते बाली उसकी ओर देखने लगी। उसकी आँखोंमें आज भी ढोलक वज रहे थे, ब्याहके गीत हो रहे थे, मेंहदीकी लालीसे उसकी हथेलियाँ भीग रही थीं। और वे सब सपने थे, जानदार सपने जो कभी मर नहीं सकते। युगों-तक ऐसी मासूम आँखोंमें तैरते रहेंगे।

बंशीने उसका हाथ अपनी हथेलीमें लेते हुए कहा : “मैं झूठा हूँ बाली, मैं बिलकुल झूठा हूँ।”

“नहीं मेरा हाथ फिरसे देखो”—बाली आज भी मचल रही थी, जैसे वह आज भी कुँआरी थी, आज भी उसकी कमरमें ढोलक और पैरोंमें धुँधरू बँधे हैं। बंशी सोच रहा था : जब तुम फिर फूलपुरमें आओगी तब तुम्हें तमाम गाँव पढ़े-लिखे मिलेंगे। हर गाँवमें तुम्हें उस तरहके कितने नौजवान मिलेंगे जिसे तुम अपनी कल्पनामें देखती रही हो। तब तुम्हें वही वर मिलेगा जिसे तुम चाहोगी। तब तुम्हारे बाबा तुम्हारे कारण अपनेको अभाग नहीं कहेंगे, तब उन्हें तुम्हारी शादीमें कर्ज या रेहन नहीं रखना पड़ेगा।

बंशीने बालीके मुँहको देखा। फिर उसने उसे अपनी बाहुओंसे ढँक लिया और फिर बंशीको महसूस होने लगा कि उसके अन्तरका भी सारा घुआँ, सारा तनाव धीरे-धीरे दूर हो रहा है। बंशीने बालीके मुँहको देखा, वह तबतक सो गई थी। उसका मन साफ़ हो गया—फिर वहाँ शान्ति थी, चाँद था, चाँदनी थी, बंशी और बाली थे।

बंशीने कुछ देरके बाद बालीको अपनी गोदमें उठाकर बरामदेमें उसकी खाटपर मुला दिया और जैसे ही वह उसे मुलाकर उठने लगा, उसने देखा बाली जग गई और वह उसे पकड़े हुए कहने लगी : “यहीं बैठो, मैं आज रातभर तुम्हारी गोदमें सोऊँगी—तुम यहाँसे नहीं जा सकते—मैं इसी तरह

सोऊंगी; फिर सुबह देखना मैं बिलकुल ठीक हो जाऊंगी और कल ही तुम्हारे साथ तुम्हारे गाँव चलूंगी—बीनूकाँ प्यार करूँगी, उसे अपनी गोदमें लिये रहूँगी। तुम्हारी सेवा करूँगी।

बंशी उसी तरह बालीके सरको अपनी गोदमें लिये हुए बैठा रहा। नरेशने बालीके बगलमें ही दूसरी खाट बिछवा दी। बंशी उसपर सोया। और बाली अपनी खाटके किनारेसे चिपकी हुई अपने दायें हाथको दूसरी खाटपर सोये हुए बंशीके सीनेपर रक्खे रही—सोती रही—और स्वप्न देखती रही। उसकी सोई हुई आँखोंमें ब्याहके ढोलक बजते रहे, शहनाई बजती रहीं। फिर सुबह हुई। बालीका हाथ अब भी दूसरी खाटपर उसी तरह फैला रहा—फैला रहा, लेकिन बंशी उस खाटपर न था।

[रचनाकाल : १९५२]

तालाबका घाव

पचवस और सिकन्दरपुरके बीच पक्के चार मीलका अन्तर है। दोनों गाँवोंके बीच, इस पूरे फ्रासिलेमें नौगढ़ाका ताल फैला हुआ है—गोल सागरकी तरह। पूरे वर्ष-भर इसका पानी इसी तरह भरा रहता है। कहा जाता है कि नौगढ़ा तीन सौ वर्ष पहले एक बहुत बड़ा शहर था। पूरे अवध-भरमें प्रसिद्ध था। इसमें कुल नौ मुहल्ले थे और हर एक मुहल्लेमें एक गढ़ी थी। उस समय गढ़ी कच्चे किलेको कहते थे, जो सम्मान और सम्पत्तिके मेरुदण्ड होते थे। तो नौगढ़ा शहर था—निकटवर्ती गाँवों-कस्बोंकी राजधानी। फिर न जाने क्यों, कैसे और कब नौगढ़ामें एक भूचाल आया, धरती काँपी, इसमें चन्द्र फटे और पूरा शहर धरतीके गर्भमें समा गया—धरतीके गर्भमें पूरा नौगढ़ा; उसपर अनन्त जल; इसकी लहरें, और फिर एक बहुत बड़ा तालाब। आज पचवस और सिकन्दरपुरके बीच यही चार मीलमें फैला हुआ नौगढ़ाका ताल है—बेहद हसीन और बेहद धनी। इसके

चारों ओर न जाने क्यों कैसे ताड़के लम्बे, ऊँचे-ऊँचे वृक्ष हैं, बेंतकी झाड़ियाँ हैं, नरकुटकी हरियाली, ताड़-वृक्षोंकी भी अपनी विशेषता है। ये ताड़-वृक्ष बाँझ हैं। इनमें न कभी फल आते हैं न रस चूता है। और बेंतकी झाड़ियाँ तो इस सत्यके प्रतीक ही हैं कि “फूलें फलें न बेंत, यदपि सुधा बरसे जलद।” लेकिन नौगढ़ाका तालाब न तो बाँझ ही है, न निर्धन। इसका पानी साफ़ और नीला है। इसमें न जाने कितनी मछलियाँ हैं; हर तरहकी। किनारेपर लाल-सफ़ेद कमल हैं, कुमुदिनी हैं और पुरइन्के गोलाकार पत्ते हैं, जिसके सहारे जलपखेरू पलते हैं।

जानकी सिकन्दरपुरकी रहनेवाली थी और इसकी सखी बेला पचवसमें रहती थी। जानकी ब्राह्मण थी और बेला मांझीकी लड़की; लेकिन दोनों सखियाँ थीं, इसलिए उन दोनोंकी जातियाँ मिट गई थीं और दोनों किसी बेनाम जातिकी हो गई थीं : जानकी-बेला।

जानकी जब नौगढ़ा तालसे ऊपरकी ओर बढ़ने लगी, उस समय पौ फट चुका था। वह पूरबकी ओर देखती हुई खड़ी हो गई, फिर उसने पचवसकी ओर देखा और उसी ओर मुड़कर बढ़ने लगी। लेकिन वह सहसा एकाएक रुक गई और पीछे मुड़ गई। अब वह अपने गाँव सिकन्दरपुरको देखती खड़ी थी और उसके सीनेपर न जाने कहाँसे एक अज्ञात बोझ बढ़ता जा रहा था और वह भीतर-ही-भीतर दबती जा रही थी। ठण्डी-ठण्डी पुर-वैया वह रही थी और जानकीका सीना, चौड़ा माथा, पैरकी पिण्डुलियाँ पसीनेसे तर होती जा रही थीं। पुरवैयाकी लहरोंमें मानो कहीं खड़ी हुई उसकी बेला सखी, छिपी-छिपी गा रही थी। जानकीके कानोंमें वह गीत नहीं टकरा रहा था, बल्कि शायद तालाबके सीनेसे यह गीत टकरा रहा था। जानकी मुड़कर तालाबकी ओर देखने लगी। चारों ओर ताड़के पत्ते हवामें बहुत तेज़ीसे खड़खड़ा रहे थे और जानकी निश्चेष्ट तालाबके नीले सीनेमें अतीतकी परछाईं देख रही थी—चाँदनी रात। बेलाकी शिकारी नाव है।

वह एक किनारे बैठी है—मुसकरा रही है। और बीचमें जानकी है, दायें उसका दूल्हा बैठा है—बच्चू। बच्चू अपनी दुल्हन जानकीका दोंगा लेने आया है और बेलाने उन दोनोंको नाव-नेवारापर आमंत्रित किया है। बेला बच्चूसे मजाक कर रही है; बच्चूकी हँसी फूट रही है; और जानकी लज्जा-संकोचके भारसे झुकी बैठी है। कितनी रात तक वह नाव आवारा बादलोंकी भाँति तालाबमें घूमती रहीं। वह उसके दायें हाथको अपने दोनों हाथोंमें लिये हुए बेलासे कह रहा है—बेला, मैं हर वर्ष सिकन्दरपुर आऊँगा—तुम्हारी सखीको भी साथ लाऊँगा और हर वर्ष इसी चाँदके नीचे तुम्हारी नावमें बैठता रहूँगा। “फिर बेलाने कहा : “पहुना, मेरी सलोनी सखीका सुहाग तब तक अमर रहे जब तक ऊपर चाँद है और नीचे नौगढ़ाका पानी।” बेलाने बाँसको नावपर रखकर अपने आँचलको चाँदनीमें फैला दिया और उसकी आँखोंमें आशीर्वाद—सहज प्रेमके आँसू भर गये और वह मुसकराने लगी : “सखी, लेकिन क्या पता मैं भी हरसाल पचवस आ सकूँगी कि नहीं। चाहती तो यही हूँ कि जीवनभर मैं अपनी इसी नावमें तुम दोनोंको टहलाऊँ...मैं...।” बेला रुक गई, क्योंकि उसी क्षण सखीके दादाने दूरसे मछली मारते हुए पुकारा। दादाकी नाववाले जालमें कोई बहुत बड़ी मछली फँस गई थी और उसने बेलाको सहायतार्थ पुकारा था।

नाव बहुत तेज़ीसे उत्तरकी ओर बढ़ गई। बेला अपनी नावको दादाकी नावसे सटाकर उस नावपर चली गई और अपनी पूरी ताकतसे दादाके साथ मछली कसे हुए जालको खींचने लगी और काफ़ी मेहनतके बाद जालमें फँसी हुई नैनी मछली नावमें आयी। बेला मेहनतके कारण पसीनेसे तर हो गई थी, उसका गला सूख गया था। वह नावसे नीचे तालाबके पानीकी ओर झुकी और अपनी अंजलिमें पानी लेकर उसे पीनेको हुई। सहसा दादाने चिल्लाकर बेलाके मुँहको मीच दिया और उसकी बँधी हुई अंजलिको दूसरे हाथसे झटककर उसने सारा पानी बहा दिया : “बेटी ! घर पानी पीना...यह पानी नहीं...बड़ा खराब पानी है अब तुम लोगोंसे क्या

छिपाना ?.... नौगढ़ाका पानी तो वैसे अमृत है, सब तालोंके पानीसे धनी है, लेकिन शुक्लपक्षमें, दशमीसे पूर्णमासीतक इसके पानीमें न जाने क्या हो जाता है....।”

“क्या हो जाता है ?”

“दादा, क्या हो जाता है ? बता दादा क्या हो जाता है ?”

“हाँ बताओ न !”

“शुक्लपक्षमें दशमीसे पूर्णमासीतक इसका पानी पीनेसे गर्भ नष्ट हो जाता है; किसी तरह वह नहीं बच सकता....।”

“सच, दादा ?”

“हाँ, जानकी बेटी ।”

“गंगा माईकी क्रसम दादा !”

“हाँ बेटी, मैं गंगामें बैठा ही हूँ ।”

सहसा उस पार नरकुटकी झाड़ियोंमें सारसका जोड़ा बहुत ऊँचे स्वरमें बोल उठा : “कुड़क !....कँड़ा....कँड़ा....क्रं....क्रं ।” जानकीने अपनी आँखोंको पोंछा, मस्तकके पसीनेको सुखाया और तालाबसे दृष्टि हटाकर वह सारसकी जोड़ीको देखने लगी । मादा सारस गर्दन झुकाये झाड़ीमें न जाने क्या देख रही थी और पुरुष सारस गर्दन ऊँची किये हुए अनवरत बोलता जा रहा था : “कँड़ा....कँड़ा....क्रं....कुँर....sss....क्रुंड़ा ।”

जानकी निश्चेष्ट रोने लगी और धीरे-धीरे अपने गाँवकी ओर बढ़ने लगी । सूरज निकल रहा था । पुरवइया अब भी तेज थी, सारसका जोड़ा अब भी बोल रहा था और जानकी निःस्पन्द रोती हुई आगे बढ़ रही थी । उसकी आँसुओंमें अब दिवंगत बन्नूकी आत्मा आ बैठी और जानकीको— अपनी दूल्हनको समझाने लगी : यह तूने क्या किया जानकी ? क्यों तूने आज नौगढ़ाका पानी पिया ? तू कितनी कमजोर है ? भविष्यमें तुझे कौन सहारा देगा ?....पगली, वह तेरी गलती नहीं थी, वह तेरा पाप-अपराध नहीं था, वह तेरी सहज गति थी, आवश्यकता थी, वह किसी भी तरह तेरा

अभिशाप नहीं था ! मैं....मेरी आत्मा, मेरा अमूर्त व्यक्तित्व इसका साक्षी है....तू जानकी है ! मैं तुझे जानता हूँ....तेरी अग्नि-परीक्षा मैंने ली है । वनवास भी मैंने ही तुझे दिया है । तेरे गर्भमें लव या कुश रहा होगा.... लेकिन खैर, अब तो तूने नौगढ़ाका पानी ही पी लिया । अच्छा ही किया ! लेकिन अब रोती क्यों है ?....चल अकेली चली चल....तेरी बेला सखी भी तो मर गई....कोई बात नहीं; मत रो....चली चल । समझ, ये सारसके जोड़े क्यों चीख रहे हैं ! ये कुछ कह रहे हैं । सोच, इतनी जवान ताड़की पत्तियाँ क्यों बाँझ हैं ? इन्हें देख, समझ और चली चल....रो मत ! तेरा मातृत्व शाश्वत है—निर्विघ्न है । अपने आँचलको सँभाल ।

जानकीके आँसू सूख गये । उसे लगा कि वह बन्नूके कन्धेपर सो गई है और बन्नू उसे सहारा दिये हुए चला जा रहा है ।

कुछ क्षणोंके बाद एकाएक पीछेसे जग्गूने पुकारा : “ओ जानकी दीदी !....क्या है दीदी ?”

जानकी जैसे स्वप्न देखती-देखती रुक गई । घूमकर पीछे देखा, जग्गू कन्धेपर डौड़ रक्खे हुए तेजीसे बढ़ा आ रहा था । जानकी खड़ी थी और अपनेको पूर्ण रूपसे छिपानेके सतत प्रयत्नमें थी । जग्गू जब समीप पहुँचनेको हुआ, वह खुशीसे हँसने लगा—बिलकुल अपनी बेला दीदीकी तरह । वही अलहड़पन, वही मस्ती । वह ज्यों-ज्यों समीप आता रहा त्यों-त्यों उसकी हँसी तेज होती रही; क्योंकि वह चाहता था कि जानकी दीदी भी हँसे, खूब हँसे । जग्गू पास आ गया, जानकी मुसकरानेके असफल प्रयत्नमें लगी थी; और जग्गूको आभास मिल गया ।

“क्या है रे दीदी ! रो रही थी तू ? बता !”

“नहीं तो भइया ! क्यों ?”

“झूठ बोलती हो दीदी !....तब हँस क्यों नहीं रही है ? हँस न !.... बेला दीदी जबसे मर गई, तबसे तू कभी मेरे घर भी न आयी । भगवान् सब पर बिपत डालते हैं, लेकिन आदमीका रिश्ता तो कभी टूटता ही नहीं ! तूने

कभी मुझे कुछ काम भी नहीं लिया...अच्छा, रुक मैं तेरी पूजाके लिए कमलके फूल तोड़ लाता हूँ !”

जग्गू भागकर तालाबमें चला गया और क्षण-भरमें भींगा हुआ वापस आया और जानकीके आँचलको कमलके फूलोंसे भर दिया : “ये ले दीदी ! मुझे मालूम है तू इतने सबेरे नौगढ़ाके तालाबपर अपनी पूजाके लिए कमलके फूल तोड़ने आयी थी और मुझे देखते ही जैसे ही वापस भागी जा रही थी। सोचती होगी कि जग्गू अब भी परेशान करेगा...नहीं दीदी, राम कसम, अब कभी नहीं; मैं तो तेरा छोटा भाई हूँ। चुप क्यों है दीदी?...कमलके फूल और चाहिए !...इसीलिए आयी थी न !”

“नहीं जग्गू ! मैं आज नौगढ़ाका पानी पीने आयी थी।”

“अभी पिया तो नहीं !”

“नहीं...पी लिया और वापस जा रही हूँ।”

जानकी निःस्पन्द थी, पत्थरकी मूर्तिकी तरह। वह सहज थी, उसकी आत्म, मन, पीडा सब एकीकृत होकर जैसे पूर्ण शान्तिपर पहुँच गये थे—मृत्युके बादकी शान्ति। और जग्गूके कन्धेसे दोनों डाँड़ नीचे गिर पड़े और वह चुपचाप जानकीके स्थिर पैरोंको देख रहा था। जग्गू डूब रहा था और जानकी किनारे खड़ी थी—एक पार; इसीलिए उसने जग्गूको सहारा दिया—

“जग्गू भइया, मछली मारने आये हो ?”

जग्गू चुप था—निश्चेष्ट। और जानकीने देखा, तालाबमें जग्गूकी छोटी नावपर एक युवक और युवती बैठे हुए हैं और नाव धीरे-धीरे इसी ओर बढ़ती चली आ रही है।

“जग्गू देखो, तुम्हारी नावपर कौन बैठे हैं !”

जग्गूने तालाबकी ओर देखा और दुश्चिन्तामें पड़ गया। उसकी नाव-पर चेतुराके कुँवर साहब विक्रम अपनी पत्नीके साथ तालाबमें मनोरंजन करने आये थे। उनके साथ बन्दूक थी, कैमरा था, थर्मस था और सेवा-

अभिवादनके लिए वे दोनों गाँव थे—पचवस और सिकन्दरपुर, जो नौगढ़ाके दोनों किनारोंपर न जाने कबसे खड़े-खड़े थक-से गये थे। जग्गूको अब शीघ्र ही जानकीको विवशतः छोड़कर तालाबकी ओर भागना था। लेकिन जग्गू चुप था, उसके भोले मन-मस्तिष्कमें जानकीके प्रति न जाने कितनी बातें, आग्रह, झुँझलाहट और रोनेकी आकांक्षा भरी थी। वह धीरे-धीरे गाँवकी ओर बढ़ रही थी।

नावपर जग्गू मौन था, थका हुआ। नाव धीरे-धीरे तालाबके नील सीनेपर डोल रही थी। विक्रम प्रियंवदाको देख रहा था, प्रियंवदा मुसकराती हुई बहुत दूरतक फैले हुए तालाबके क्षितिजको देख रही थी; और जग्गू अबतक सिकन्दरपुरकी ओर बहन जानकीको देख रहा था।

विक्रमने कहा : “आज मैं इस तालाबकी सबसे खूबसूरत चिड़ियाको मारूँगा।” और उसने हँसते हुए प्रियंवदाको दिखाया—एक ओर वत्सख, सुखाब, लालसर, जलसेन पानीमें चर-डूब रहे थे दूसरी ओर सीकपर और जलपरी—जो बार-बार तालाबमें चक्कर काटते थे और पानीमें डूब जाते थे। प्रियंवदा नावसे नीचे झुककर तालाबके पानीको देखने लगी—कितना खूबसूरत पानी है ! वे किनारेके कमल कितने अच्छे हैं और ये रंग-विरंगी मछलियाँ ! विक्रमने प्रियंवदाकी तस्वीर खींचते हुए कहा, अभी मैं इन कमलके फूलोंको तोड़वाकर, उस पारके हरे कुंजमें तुम्हारी सेज लगवाऊँगा। ये खूबसूरत मछलियाँ तुम्हारे सामने होंगी।”

विक्रमने जग्गूको कोई प्रेमका गीत गानेके लिए आज्ञा दी। वह गा न सका। उसकी आँखोंमें जानकी दीदी आँसू बन गई थीं। लेकिन कुँवरकी आज्ञा और बहनके प्रति आँसू। जग्गूको विवशतः बोलना पड़ा : सरकार ! मैंने अपने देवताकी कसम खा ली है कि मैं अब कभी भी इस तालाबमें अपनी नाव नहीं लाऊँगा और न कभी इसपर गाना गाऊँगा। बड़ा अपराधी तालाब है यह। इसके पापको बहुत ही कम लोग जानते हैं। मैं अब खेती करूँगा, लेकिन अब कभी भी इस तालाबके किनारे नहीं आऊँगा।”

“क्यों, बात क्या है?”

“बता दूँ सरकार?.....लेकिन किसीसे कहिएगा नहीं; हर शुक्लपक्षमें दशमीसे पूर्णमासी तक इस तालाबका पानी पीनेसे स्त्रीका गर्भ नहीं बच सकता, गिर जायगा।”

जग्गू चुप हो गया क्योंकि उसके कण्ठमें जानकी दीदी पैठ गई—वह जानकी दीदी जो अपने अंकमें एक शिशुको सुला रखनेके स्वप्नसे हरदम पागल रहती थी।

प्रियंवदा सहज शंका, और भयसे हैरान हो गई। उसने अपनी आकुलतामें विक्रमसे आग्रह किया कि वह तुरन्त नावसे तालाबके किनारे उतर जायगी। वह तालाबमें नहीं रुक सकती।

ताड़-वृक्षोंकी सघन छाया। बेंत और नरकुटकी झाड़ियोंके बीच एक हरित कुंज। मध्याह्नका सूर्य, उसकी तेज किरनें ताड़के लम्बे-चौड़े पत्तोंमें खो रही थीं। उनसे छनती हुई धूप नीचेकी झाड़ियोंपर खत्म हो गई थी। कुंजमें हरीतिमा थी, शान्ति, सुखद वातावरण; तालाबसे बहती हुई पुरव-इया समूचे कुंजमें भर गई थी। धरतीपर कमलके लाल-लाल पुष्प बिछे थे। हरी धरतीपर लाल कमलके फूलकी सेज; उसपर गोरी प्रियंवदा विक्रमके सहारे लेटी थी। विक्रम बैठा था और उसके सामने अनेक खूबसूरत जल-पक्षेण्ड मारे हुए रक्खे थे। उनके ताजे खूनसे नीचे धरती धीरे-धीरे अब तक लाल हो रही थी। उनसे कुछ दूरपर, खूबसूरत मरी हुई मछलियोंका भी ढेर था। वे जालसे पटक-पटककर मारी गई थीं, इसलिए उनका खून भीतर ही सूख गया था।

प्रियंवदा लेटी हुई ऊपरकी ओर देख रही थी। विक्रम अपने शिकारकी ओर। दोनों चुप थे। एकाएक विक्रमने प्रियंवदासे कहा : “तुम इस तालाब और कुंजकी रानी हो।”

प्रियंवदा मुसकरा दी और कुछ क्षणोंके बाद उसने कहा : “मैं आजके

शिकारका गोश्त नहीं खा सकूंगी, क्योंकि ये इसी तालाबके पानीके जीव हैं।”

“तो तुम्हें क्या डर है?”

“डर है न मुझे ! तुम्हें क्या मालूम !”

प्रियंवदा हँस पड़ी; और हँसनेके बाद सतत मुसकराती रही। विक्रम भीतर-ही-भीतर सोचने लगा—बन्दूक, तालाब, जग्गू, अभीका खाना, सामनेका शिकार, ताजे खून और सबके ऊपर सुखद कुंज, निर्विघ्न एकान्त—प्रियंवदा, तालाबका पानी, शुक्लपक्षकी दशमीसे पूर्णमासी, प्रियंवदा, आजका सेज !.....तालाबका पानी.....।

प्रियंवदाने पूछा, “क्या सोच रहे हो?”

“सोचता हूँ इन्हीं फूलोंपर मैं भी सो जाऊँ !.....सो जाऊँ?”

“सो जाओ न !”

विक्रम पूरा सो नहीं पाया कि पास ही कहीं झाड़ियोंमें वही सारसका जोड़ा चीख उठा : “कुड़क !.....कँड़ा.....कँड़ा.....कुँई.....कुँई sss”

बड़े बेवकूफ हैं ये सारस !

अपराधी क्यों नहीं ?

विक्रमने तत्काल अपनी बन्दूक सँभाली। झाड़ियोंमें पिल पड़ा; और धीरे-धीरे सारसका निशाना लेते-लेते तालाबके किनारे पहुँच गया। सारसकी जोड़ीकी गर्दनें ऊँची-से-ऊँची तनती जा रही थीं। पुरुष सारस, मादा सारसके आगे-आगे चक्कर काटता हुआ एक झाड़ीसे दूसरी झाड़ीमें बढ़ता जा रहा था। ऊपर ताड़के नंगे पत्ते हवामें तड़प रहे थे। विक्रम बार-बार निशाना लेता, बैठता, झुकता, कन्धा सम्हालता, आड़ लेता फिरता; लेकिन सारसका जोड़ा निशानेपर न आता। विक्रम थककर एक ताड़के सहारे खड़ा हो गया। वह हैरान था, सारसपर कम, अपनेपर अधिक। सहसा सारसका जोड़ा उसे ढूँढ़ता हुआ मैदानकी ओर बढ़ने लगा। विक्रमने नर-सारसका

निशाना लेकर उसके सीनेपर गोली चला दी। सारसको गोली नहीं लगी; लेकिन वे दोनों उसी जगहपर खड़े हो गये और निनिमेष सर उठाये हुए विक्रमको देखने लगे। विक्रमने फिर निशाना लिया और नर-सारस मादाके चारों ओर बहुत तेजीसे चक्कर काटने लगा। उसने लगातार दो बार गोली चलाई, लेकिन नर सारस उसी तरह चक्कर काटता रहा और बीचमें मादा सारस गर्दन उठाये चीखती रही : कुँड़क !...कँड़ां...कुँरं...। विक्रम कुछ देरतक निःस्पन्द वहीं ताड़के सहारे खड़ा रहा, फिर तेजीसे तालाबके किनारेसे फिर झाड़ीमें वापस चला गया।

प्रियंवदा सो रही थी। वह अस्त-व्यस्त थी। उसका आँचल; उसके वस्त्र, उसके घुँघराले बाल और उसकी साँसोंमें मानो हज़ारों बेनाम, अदृश्य सपने उलझ रहे थे। विक्रमने झुककर प्रियंवदाको सरसे नाखूनतक देखा। उसको स्पष्ट भी हुई और ग्लानि भी; और वह एक गिलास लेकर तेजीसे तालाबकी ओर मुड़ गया। गिलासको सात बार तालाबमें डुबाया, ऊपर उठाया और पानीको गिराता रहा। आठवीं बार गिलास भरकर वह झाड़ीमें वापस चला गया और प्रियंवदाको देखता हुआ खड़ा हो गया। दूसरे क्षण वह पास बैठ गया और उसके खुले हुए होठोंके बीच उसने गिलासको टेढ़ा कर दिया। कुछ पानी प्रियंवदाके गलेसे नीचे उतर गया और शेष, नीचे कमलकी पँखुड़ियोंपर फैल गया। विक्रमने गिलासको दूर रख दिया। इस बार सारसके जोड़े और भी तेजीसे कण्ठाकी चीख चीखने लगे और विक्रमका दिल एकाएक बहुत तेजीसे धड़कने लगा। वह लेटने लगा, लेकिन नीचे कमलके फूल पानीसे तर थे। वह पासमें एक नया वस्त्र बिछाकर सोने लगा; और उसने देखा धरतीपर फैला हुआ चिड़ियोंका खून वस्त्रके ऊपर उभर आया।

विक्रमके दिलकी धड़कन तेज थी और उसके मन-मस्तिष्कमें सारसके जोड़े; उसकी बन्दूक, तालाबका पानी, प्रियंवदाका अस्तव्यस्त शरीर, चिड़ियोंके खून तालाबकी असंख्य मछलियोंकी तरह तैरने लगे। वह हत-

प्रम-सा बैठ गया। पहले उसने कुछ देरतक प्रियंवदाको देखा; फिर दून्यमें देखने लगा और धीरे-धीरे दायें हाथकी कुहनीपर आधा लेट गया और उसकी आँखोंका सीमित क्षितिज असीम हो गया।

सारसके जोड़े कुछ और लम्बे क्षणोंतक चीखते रहे। तालाबके नीचे न जाने कितने वर्षोंसे दबा हुआ नौगढ़ा धीरे-धीरे हिलने लगा और तालाबके नीचेसे समूचा नौगढ़ा जैसे चिल्ला उठा : मेरा दम घुट रहा है ! मुझे निकालो, मेरा दम घुट रहा है ! मुझे ऊपर उठाओ !

सारसका जोड़ा उड़ा। तालाबके नीचे जाकर, धरतीके अन्तरालमें डूबे हुए नौगढ़ाको अपने पंखोंमें बाँधा और धीरे-धीरे नौगढ़ा ऊपर आ गया—तालाबके ऊपर; कमलकी पँखुड़ियोंपर।

...नौगढ़ाके बीचो-बीच बहुत विशाल वह वृक्ष है—बहुत घना और छायादार। पंचायत बैठी हुई है। प्रत्येक गढ़के सरपंच एक पंक्तिमें बैठे हुए हैं। एक किनारे पुरोहित और अन्य ब्राह्मण प्रतिनिधि बैठे हैं। सबके बीचमें राजा बैठा हुआ है, तथा इधर-उधर नगरके प्रतिष्ठित लोग बैठे हैं। समूची पंचायत बैठी है। उनके सामने केवल दो व्यक्ति खड़े किये गये हैं—युवती सरस्वती और युवक राजसिंह। राजसिंहके दोनों हाथ बँधे हैं और उलटे खींचकर उसकी पीठपर बाँध दिये गये हैं। सरस्वतीके सरपर एक काला पर्दा पड़ा है और वह स्थिर मूर्तिवत् खड़ी है।

गढ़ीके एक प्रमुखने कहा; “सरस्वती ब्राह्मणी है और राजसिंह क्षत्री।”

दूसरेने बातको आगे बढ़ाया; “सरस्वती विधवा थी राजसिंह अविवाहित।”

तीसरेने समर्थन किया; “पिछले चार महीनेसे दोनोंके बुरे संबंध थे।”

चौथेने कहा; “और सरस्वतीको तीन महीनेका गर्भ है।”

पाँचवेंने व्यंग्य किया; “हाँ इसने नाम भी कमा लिया है।”

छठेने स्पष्ट किया; “अभिशाप्त रक्तका अपराधी पिता राजसिंह है।”

सातवें, आठवें और नवें गढ़ीके प्रमुखोंने इसका समर्थन किया। इसके उपरान्त नगर पुरोहितने घोषित किया कि धर्म, संस्कृति, परम्परा, जाति और नौगढ़ाकी प्रतिष्ठाके नामपर दोनोंको कठिन दण्ड मिलना चाहिए। पंक्तिमें बैठे हुए ब्राह्मणोंने इसका समर्थन किया और सब राजाकी ओर देखने लगे।

राजा चुप था, सभामें शान्ति थी। नगरके लोग जत्थे-जत्थे और गिरोहोंमें बटकी ओर बढ़ते चले आ रहे थे। थोड़ी ही देरमें अपार जन-समूहसे षट-वृक्ष घिर गया। राजा अब भी चुप था। जन-समूहसे आवाज आई : “दण्ड शीघ्र सुनाया जाय !” राजाने कहा, “मैं उसीको सोच रहा हूँ।”

राजा अपनी जगहसे उठा, युवकके सामने जाकर खड़ा हो गया, और उसने युवककी आँखोंमें ढूँढ़ा। उसमें आँसूका कोई बूँद तक न था, न उसमें करुणा थी। कुछ और अवश्य था, जिसे देखकर राजा सिहर उठा। राजाने फिर सरस्वतीके सरके काले पर्देको उतार दिया और उसने उसकी आँखोंमें देखा। उसमें भी किसी तरहका अभियोग न था। निःस्पन्द थीं वे आँखें।

राजा अपने आसनपर लौट आया। अपार जन-समूहसे धीरे-धीरे कोलाहल पैदा होने लगा।

राजाने सबको शान्त करते हुए सरस्वतीसे पूछा : “तुम्हें कुछ कहना है ?”

युवककी दृष्टि सहसा सरस्वतीकी ओर घूमी। सरस्वतीके हिलते हुए सर और बन्दी जिह्वाने कहा : “कुछ नहीं कहना है !”

यही प्रश्न राजाने युवकसे किया। उसने भी निश्चेष्ट भावसे सर हिला दिया कि मुझे भी कुछ नहीं कहना है।

राजाने सरस्वतीसे कहा : “तेरी कोई अन्तिम इच्छा ?”

सरस्वती तेजीसे बढ़कर राजसिंहसे सटकर खड़ी हो गई ! जन-समूहमें

अशान्ति फैल गई। राजाने सबको चुप कराते हुए राजसिंहसे पूछा; “और तेरी कोई इच्छा ?”

राजसिंहने बढ़कर पुरोहितके मुँहपर थूक दिया और सरस्वतीसे सटकर खड़ा हो गया। समूहका कोलाहल बढ़ गया। सभामें अशान्ति फैल गई।

राजाने घोषित किया : “अमानवीय ढंगसे मृत्यु-दण्ड।”

जनसमूहमें शान्ति फैल गई। युवकने जन-समूहकी ओर देखते हुए कहा : “पहले उस अमानवीय ढंगका प्रयोग मुझपर हो।”

लेकिन युवककी बात नहीं मानी गई। दण्ड-निर्णायकोंने जो कुछ निश्चित किया; वही हुआ। दो बैलोंका मजबूत रथ मँगाया गया। सरस्वतीके भी हाथ, राजसिंहकी तरह उसकी नंगी पीठपर बाँध दिये गये।

रथके जुएमें दायें ओर राजसिंह और बायें ओर सरस्वतीका सीना जकड़कर बाँध दिया गया और रथपर दुगुनी संख्यामें नगरकी ब्राह्मणी विधवाएँ बैठाई गई—दर्शकके रूपमें; जिससे उन्हें धार्मिक, जातीय निरंकुशताका आभास हो जाय और अमानवीय दण्ड-प्रताड़नाका इतना आतंक उनके मन-मस्तिष्कमें छा जाये कि अंत तक वे अपने-आपमें काँपती रहें। इस रथके पीछे लगातार कई रथ जुते और सबपर नगर-भरकी विधवाएँ बैठीं और जनसमूह इसके किनारे-किनारे खड़ा कोलाहल करने लगा।

एक ही साथ राजसिंह और सरस्वतीपर तपाये हुए लाल लोहेकी मार पड़ी। राजसिंहने तड़पकर सरस्वतीको देखा और अकेले रथको खींचता हुआ चिल्ला उठा : “सरस्वतीको न मारो, उसके बदले मुझे ही मारो ! मुझे ही मारो !”

सरस्वतीपर और भी मार पड़ने लगी—ऊपर-नीचे, दायें-बायें चारों ओरसे भीड़से आवाज उठने लगी : “रथका जुआ सीधा ही रहे ! रथका जुआ सीधा ही रहे !”

कुछ ही क्षणोंके बाद सरस्वती बेहोश होकर जुएपर झूल गई। और रथ

रुक गया। रथपरकी स्त्रियोंने सरको और भी नीचे गाड़ लिया और उनके सिसकनेकी काँपती हुई आवाज़से वातावरण अभिभूत हो गया, लेकिन मारकी बौछार पड़ती रही। प्रताड़नाके शोले दहकते ही रहे। रक्तसिक्त, राजसिंह अकेले रथको खींचता रहा। सरस्वती धीरे-धीरे ठण्डी हो गई और उसकी कटी-फटी लाश रथके बायें जुएमें झूलती रही। राज अकेले रथके जुएको खींचता हुआ चिल्लाता रहा : “मुझे और मारो; और बल और प्रताड़नासे मारो; मुझमें अभी साँस और बल दोनों हैं।”

पूरे दिन रथ उसी तरह नगर-भरमें घूमते रहे और फिर रात होनेको हुई। अँधेरा बढ़ता गया। रथ रुक गये। हवामें न जाने कहाँसे बदबू फैलने लगी।

विक्रमका दम घुटने लगा। लेकिन उसके दिलकी धड़कन थम गई थी। उसने करवट बदलकर एक लम्बी-सी निःश्वास ली।

.....नौगढ़ाकी धरती फट गई और नौगढ़ा उसमें समा गया। उसकी पंचायत भी, धर्म-संस्कृति भी और वे रुके हुए रथ भी। सबके-सब नीचे समा गये और उसपर नीला तालाब लहरें लेने लगा। बीचमें स्वच्छ पानी, मछलियाँ, किनारे-किनारे पुरइनके हरे-हरे पत्ते और कमलके लाल-सफ़ेद फूल और उसपर अनवरत उड़ते बैठते-तैरते हुए जल-पखेरू और तालाबके चारों ओर ताड़-वृक्ष, बेंत और नरकुटकी घनी-हरी झाड़ियाँ।

शरद-पूर्णिमाकी रात। पूरे चाँदकी चाँदनीसे तालाब भर गया है। इसमें बहुत नन्हीं-नन्हीं कोमल लहरें उठ रही हैं। तालाबके बायें छोरसे एक मूँगेकी छोटी-सी नाव धीरे-धीरे बायें छोरकी ओर बढ़ रही है। उसपर अकेला कोई युवक बैठा है। और अपनी मस्तीमें गा रहा है, ओ पूनमके चाँद ! तुझे मैंने तब भी देखा था; जब मैं अकेला नहीं था और आज भी देख रहा हूँ जब मैं अकेला परम एकाकी हूँ। उस बार तू धनी था, तुझमें सब कुछ था, बहुत आकर्षक था तू ! ओ पूनमके चाँद ! आज तुझमें कुछ नहीं है, न धन न आकर्षण। मैं तब आदमी था, मेरी आँखोंमें

समूचा एक जगत् था। मैं आज घाव हूँ। यह तालाब मेरा शरीर है। ओ पूनमके चाँद ! मत रो, आ मेरे पास आ; मैं इस तालाबका घाव हूँ। मुझमें तेरे लायक तुझे गीत मिलेंगे। तू चाहे जितना चाह, ले-ले और अपने सूने दामनको भर ले। मैं घाव हूँ। मेरे गीत कभी खत्म नहीं होंगे। इन गीतों-में तुझे भी शान्ति मिलेगी।

मूँगेकी नाव तालाबके बीचमें पहुँचते-पहुँचते सहसा रुक गई। युवक चूप हो गया। कुछ दूरपर एक पूर्ण विकसित लाल कमल बहता आ रहा था। ज्योत्स्नामें लिपटी हुई उसपर एक युवती सोई पड़ी थी अस्त-व्यस्त, और एकाकिनी बहुत करुण स्वरमें गा रही थी : ओ तालाबके घाव ! मत रो ! अब कोई गीत गा, जिसे मैं सुनूँ ! कोई कहानी कह, प्रेम-कहानी, जिसे सुनते-सुनते मुझे नींद आ जाये। मैं कबसे जग रही हूँ; अनन्त घड़ियाँ बीत गईं मुझे नींद नहीं आई ! ओ तालाबके घाव ! मत रो, मैं भी इस तालाबका घाव हूँ। आ, मेरे समीप आ जा। तुझे भी नींद लगी होगी ! पहचान गये न !.....मुझे तो कभी भ्रम ही नहीं हुआ था। हम लोग उस जन्म-से ही स्पष्ट हैं; उस युगसे ही एक हैं जब हम आदमी थे, अभिशप्त थे और अपराधी थे। अब तो हम इस तालाबके घाव हैं। इसका पानी हमारे वरदान है। उस वरदानके प्रतीक, ये किनारे-किनारे चारों ओर खड़े हुए ताड़-के वृक्ष हैं, बेंतकी झाड़ियाँ हैं। आओ मेरे पास आ जाओ तालाबके घाव ! मैं जिन कमलकी पंखुड़ियोंपर सोई पड़ी हूँ, वे मुझमें चुभ रही हैं। मेरी कमर टूट गई है इसलिए मैं स्वयं उठ भी नहीं पा रही हूँ। आओ, धीरेसे अपनी बाहुओंपर मुझे उठा लो और मुझे अपनी गोदमें सुलाये हुए अपनी नावपर बिठा लो।

युवक अपनी नावसे नीचे तालाबके पानीपर उतरा और तेजीसे बढ़कर युवतीको अपनी बाहुओंपर उठा लिया और गोदमें लिये हुए अपनी नावपर बैठ गया ! नाव धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। युवती गोदमें सो गई। युवक पूनमके चाँदको देखता हुआ फिर गाने लगा : ओ पूनमके चाँद ! मुझसे

स्पर्द्धा किस बातकी ! हम दोनों एक हैं—तालाबका घाव ! तू अब हँस क्यों रहा है ? मेरे ही गीतोंको पाकर तुझमें हँसी फूट रही है । मैं तो घाव हूँ । मुझे देख और....”।

विक्रम तेजीसे उठा और दौड़ता हुआ झाड़ीको पार करके तालाबके किनारे पहुँच गया । तालाबमेंसे वही सारसका जोड़ा निकला और दोनों पंखमें पंख जोड़े हुए तालाबके उस पार उड़ने लगे । विक्रम वहीं खड़ा था । उसके हाथमें बन्दूक नहीं थी; उसके माथे और मुखपर निर्वेदके प्रस्वेद कण थे । सारसका जोड़ा उस पार बैठकर चीखने लगा—कूँडू !.....कंड़ा.... कड़ा....कुरं....कुरं....”।

विक्रम झाड़ीमें वापस लौट गया । प्रियंवदाने अँगड़ाई लेते हुए कहा; “विक्रम ! सच मैंने एक स्वप्न देखा है कि तूने मुझे इस तालाबका पानी पिला दिया है । स्वप्न भी कितने बेवकूफ होते हैं !”

अपराधी क्यों नहीं ?

विक्रमका माथा पसीनेसे तर था । प्रियंवदा उसे खुश करनेके लिए उसकी गोदमें खेल रही थी ।

“सच, मैंने तुझे इस तालाबका पानी पिला दिया है !”

“झूठ कहते हो, मुझे कभी विश्वास नहीं हो सकता; मैं सृष्टि हूँ और तुम सृष्टिके उपासक हो ।”

विक्रम चुप था—निश्चेष्ट । उसकी आँखोंमें तालाब हिलोरें ले रहा था । पासकी शिकार की हुई चिड़ियाँ, मछलियाँ, सज्जाके मुरझाये हुए कमलके फूल जैसे चल रहे थे; सब मरे नहीं थे; ज़िन्दा थे और तालाबकी ओर खिंचे जा रहे थे ।

[रचनाकाल : १९५२]

बबलू

आज भी सुबह आँख खुलते ही जैदेवने बबलू दीदीको पुकारा । पतिकी यह आदत स्वभावतः पूर्णिमाको बिलकुल नहीं पसन्द है । वह पिछले दिनोंमें लगातार पतिको मना करती चली आ रही है कि ऐसा मत किया करो । सोकर उठनेपर दुनिया पहले भगवान्का नाम लेती है, और इन्हें तो बस, ‘बबलू दीदी’, ‘बबलू दीदी’ ।

तभी आज विवश होकर पूर्णिमाने पतिसे कुछ कटु-स्वरोंमें कहा, “बबलू ! उसपर भी ‘दीदी’ । मैं कहती हूँ कि बबलूको बबलू कहकर क्यों नहीं पुकारते ! या उसे सीधे-सीधे ‘आया’के नामसे पुकारा करो । उस दिन मिसेज दासके घर सभी औरतोंके बीच मेरी इज्जत धूलमें मिल गयी । औरतें कहने लगीं कि इनकी नौकरानी ही इनके साहबकी दीदी है ।”

जैदेव विस्तरसे उठकर कमरेमें टहलने लगा था । वह इस समस्यासे अब तक अपने-आपमें तटस्थ था । पर आज उसे विवश होकर उत्तर देना

पड़ा, "वे सभी औरतें वेवकूफ़ हैं—जो बबलूको मेरी नौकरानी समझती हैं। बबलू मेरी पूज्या है।"

"जरा समझ-बुझकर मुँहसे बातें निकाला करो!"

"खूब समझा-बुझा है—वर्षों बीत गये!"

"तो बबलूको अपने सिरपर विठाये घूमो! मुझे बेमतलब पागल मत बनाओ।"

जैदेव हँस पड़ा। उसकी भीठी हँसीसे कमरेका संत्रस्त वातावरण कुछ शुद्ध हो गया। उसी बीच बबलू हाथमें चायका प्याला लिये कमरेमें प्रविष्ट हुई। उसे देखते ही पूर्णिमा गुस्सेसे बाहर चली गयी। जैदेव लम्बी-लम्बी घूंटोंमें चाय पीने लगा।

बबलूने स्नेहसे टोका, "धीरे-धीरे चाय पियो न!"

"दीदी, इतनी अच्छी चाय है कि जो कहता है—एक ही घूंटमें पी जाऊँ!"

बबलू दीदीने हँसते हुए कहा, "आजसे तुम्हें नाश्तेमें दूध पीना पड़ेगा—ओबल्टीन मिलाकर।"

जैदेवको दूध पीना बहुत पसन्द नहीं है, फिर भी उसने दीदीका कोई विरोध न किया। जैसे बबलू ही जैदेवकी गृहस्थीकी धुरी है। अखबारवाला, घोबी, नौकर-चाकर, बाहर-भीतर सबकी मालकिन बबलू ही है। सब कोई, हर बातके लिए उसीसे आज्ञा माँगते हैं। हर कदमपर बबलूसे ही लोग पूछने आते हैं। उसकी ममता और स्नेहसे सब इस भाँति अभिभूत हैं कि जैसे बबलूकी आज्ञाके पालनमें ही उन सबको परम सुख मिलता है।

घरमें एक नौकर और है—मनोहर। वह बीड़ी पीता है। वह बीड़ीके लिए बबलूसे ही पैसे माँगता है।

जैदेव बाबूको चाय पिलाकर बबलू दीदी जैसे ही भीतर बरामदेमें आयी, मनोहर उससे बीड़ीके लिए पैसे और आज्ञा माँगने लगा कि वह बाजार जायगा, उसकी बीड़ी कलसे ही चुक गयी है।

घरकी स्वामिनी पूर्णिमा मनोहरको बबलूसे बातें करते हुए देखकर गुस्सेसे लाल हो गयी—"मुझसे क्यों नहीं पूछते? क्या बातें कर रहे थे उससे? अगर ठीकसे रहना है तो रहो, नहीं तो निकल जाओ सीधे यहाँसे। जिसे पंख मिला है, वह आसमानमें उड़े! बबलू दीदी! बबलू दीदी! जैसे ब्याहकर यही आयी है। बहुत नौकर-चाकर होंगे संसारमें, लेकिन कहीं भी मेरे घरकी तरह नहीं। छिः किसी कामकी होती तो और न जाने...."

मनोहर भयसे दूर हट गया। बाहरसे दूध-मक्खनवालेकी आवाज आयी, "बबलू दीदी! रामसरन... दूध मक्खनवाला!"

बबलूने दूध लेते हुए कहा, "रामसरन, कलसे जरा और सबेरे दूध लाया करो, अब हमारे साहब नाश्तेपर दूध पीयेंगे! और हाँ, कलसे दो टिकिया मक्खन और!"

उसी क्षण पूर्णिमाने बात सिरपर ली, "क्यों, कलसे दो टिकिया मक्खन और आयगा? किसने कहा है तुमसे? क्या जरूरत है?"

बबलूने सिर झुका लिया। दूधवाला चला गया। पूर्णिमा और तेज स्वरोमें कहती रही, "कौन हो तुम? सबकी चिन्ता तुम क्यों करती हो? नौकर-चाकर, दूध-अखबार, सब्जीवाले वगैरहको तुम अपनी तरफसे क्यों आज्ञा देती फिरती हो? मुझसे क्यों नहीं पूछती? एक बात ध्यानमें रखो आजसे, तुम अपनी हैसियत समझकर चला करो, वरना...." बबलू आँखोंमें आँसु भरे चुपचाप वहाँसे चली गयी।

संत्रस्त पूर्णिमाके सामने जैदेव आ खड़ा हुआ, और धीरेसे बोला, "वरना... वरना क्या?"

जैदेवकी आवाज सुनकर बबलू दीदी झपटी हुई आयी, "कुछ भी तो नहीं! चलो यहाँसे न! चलो नाश्ता-पानी करो। नहानेके लिए पानी गरम है! यहाँ कुछ नहीं हुआ है? सच, कुछ नहीं!"

"नहीं दीदी, कुछ तो जरूर है! बहुरानीकी आवाज सड़क तक फैल रही थी।"

“तो क्या हुआ ?” बबलू दीदीने जैदेवको वहाँसे हटाते हुए कहा, “चलो यहाँसे ?” पूणिमाको बबलूका यह स्वभाव और भी असह्य है, “तुम कौन हो, पंचायत करनेवाली ! चली जाओ तुम यहाँसे ! चली जा हमारे बीचसे । हम लड़ेंगे, रुठेंगे, तुमसे मतलब !”

“हाँ ! तो यह बात है !” जैदेवने बड़ी गहरी दृष्टिसे बबलूको देखा । बबलू सिसककर रो पड़ी, “मैं अपनी गलतीके लिए माफ़ी चाहती हूँ बहुरानी, आजसे मैं आपके बीचमें कभी नहीं बोलूँगी !”

बबलूके वहाँसे चले जानेके बाद, जैदेवने पत्नीसे सविनय कहा, “तुम मुझे इस घरमें रहने देना चाहती हो कि नहीं !”

“क्या मतलब ?” पूणिमाने पूछा ।

“मतलब स्पष्ट है । यदि तुम्हारी दृष्टिमें बबलूके लिए कोई उचित स्थान नहीं है, तो मेरे लिए भी नहीं है । मैंने कितनी बार तुमसे कहा है, पर तुम न जाने क्या सोचती हो ? तुम मेरी बबलू दीदीसे जलती हो ! यह पाप है तुम्हारा, हम दोनोंका पाप है यह !”

“चुप रहो, मैं तुम्हारी तरह भावुक नहीं हूँ । मैं समझती हूँ, सबको अपनी सीमामें रहना चाहिए, सबका अलग-अलग दर्जा है ।”

“तुम बबलूको नौकरानी समझती हो, यही है न !”

“और क्या समझूँ मैं उसे ? आपकी मालकिन होगी वह ! बेवकूफ़ कहींकी !”

“ज़रूर है वह मालकिन ! यह व्यंग्य नहीं है, सत्य है यह !”

“तो अपनी जगह मैं भी सत्य हूँ !”

“ठीक है,” जैदेवने दीप्त स्वरोंमें कहा, “आजसे करीब एक साल पूर्व, जिस दिन मैं तुम्हें ब्याहकर इस घरमें ले आया, तुम शायद भूल गयीं अपनी बबलू दीदीको ! उसे तुम्हारे सामने रखकर, मैंने तुमसे कुछ बातें बतायी थीं ।”

पूणिमाने कटु स्वरोंमें कहा, “जी हाँ, मुझे याद है । यह भी याद है

कि तुमने मुझे विवश करके अपनी बबलू दीदीके चरण छुलाये थे । मेरे लिए असह्य है वह बात !”

“ऐसी बात थी, तो तुमने तभी क्यों नहीं कहा ?”

“मुझे क्या पता था कि यह……।”

जैदेवने बड़े दर्दसे कहा, “तुम्हें कुछ भी पता नहीं ! तुम कुछ नहीं जानती ! तुम मेरी बबलू दीदीको जरा भी नहीं जानती !”

“होंगी तुम्हारी बबलू दीदी !”

“ठीक है, पर यह विश्वास मानो, यह घर-गृहस्थी बबलू दीदीकी ही बसायी हुई है । अगर वह न होती, तो आज यह घर न होता । यहाँ कुछ न हुआ होता ! न तुम……न मैं ! यह गृहस्थी बबलू दीदीका आशीर्वाद है, जिससे तुम नफ़रत करती हो !”

“ओ हो ! फिर इस घरमें मेरी क्या हैसियत !”

पूणिमा आवेशसे जाने लगी, जैदेवने उसका रास्ता रोककर कहा, “आज पूरी बात सुन लो, मुझसे फिर न कहना कि बताया न था । कहनेसे बातें छोटी पड़ जाती हैं, पर तुमने मुझे विवश कर दिया !……जो कुछ मैं आज हूँ, यह सब बबलूका निर्माण है । उसीकी माया है यह सब ! मैं तब कुछ और था—पूर्णतः और । मैं हर तरहसे अपनेको मिटा चुका था……।

……एक तूफ़ानी रात । तेज़ हवाके बीच मूसलाधार बारिश हो रही थी । जैदेव शराबके नशेमें बेसुध आधी रातको अपने कमरेके पास आया । आया क्या, टैक्सीवालेने उसे वहाँ डाल दिया । वह लड़खड़ाता हुआ अपने बन्द कमरेके तालेमें कुञ्जी लगाने लगा । “इस तालेमें कुञ्जी क्यों नहीं जा रही है । यह ताला बदमाश है ! खुल जा बेटे सीधेसे ! नहीं तो, नहीं तो बेटे…… सारा मकान, मकान गिरा दूँगा । यह कुञ्जीमें बदमाश है !”

सहसा एक स्त्री स्वरमें कुछ सुनाई दिया, “लाइए आपका ताला मैं खोल दूँ । मुझे दीजिए ताली !”

“तुम कौन हो ? कौन हो तुम ?”

“ओह औरत है तू! समझ गया, सब समझ गया, तू औरत है, औरत! मेरी तरह तू भी है। बोल क्या है तू? पुलिस बुलाता हूँ अभी।”

“लाइए, ताली मुझे दीजिए! मैं आपका कमरा खोल दूँ। आप घरमें जाइए, आप भीग रहे हैं।”

“और तुम? तुम भी तो...तुम भी तो...। तू औरत है...औरत! तू भाग जा यहाँसे, हाँ! मैं बड़ा बदमाश आदमी हूँ, हाँ! बहुत बुरा हूँ। नहीं भागोगी? अच्छा ले...।”

नशेमें चूर मैं उस स्त्रीको मारने दौड़ा, पर लड़खड़ाकर नीचे गिर गया, बहती नालीमें। फिर मुझे कुछ होश न रहा—और सुबह जब होश हुआ मुझे, तब मैंने अपने-आपको पाया कि मैं अपने कमरेमें, करीनेसे बिछे हुए बिस्तरेपर हूँ। मेरे कपड़े, मेरा सामान, मेरा समूचा घर जैसे किसीके हाथसे सँवर उठा था। मेरे माथेपर पट्टी बँधी थी। मैं हैरान होकर अपने सूने घरमें किसीको ढूँढ़ने लगा। दरवाजेसे बाहर निकला—बरामदेमें देखता हूँ कि नंगी फर्शपर वही औरत गठरी बनी लेटी है। सारे कपड़े भोगकर तर है—मुझे लगा कि वह अवश्य मर गयी है। मैं पास गया। डरते-डरते उसे छुआ—उफ! बुखारसे वह बेहोश पड़ी थी। मैं उसे कमरेके अन्दर उठा ले आया। पाँचवें दिन जाकर किसी भाँति उसकी आँखें खुलीं—पर उसे निमोनिया हो गया था। मुझे देखते ही वह बोली, “बाबूजी, आपने नाहक मुझे जिला लिया। सच, मैं मर गयी होती, तो कितना अच्छा हुआ होता।”

मैं बोला, “मैं भी अगर उस रात मर गया होता।...क्यों?”

“छोड़ो मरनेकी बातें, मरे वह, जिसने मुझे उस रात बेतरह मारकर घरसे निकाल दिया।”

“वह जिससे तुम्हारा ब्याह हुआ था?”

“ब्याह कैसा? उसने मुझे खरीदा था। अब उसने दूसरी खरीद ली! और वह मुझे...।”

यह कहते-कहते वह रो पड़ी, बच्चोंकी भाँति काँप-काँपकर रोती रही। फिर, मेरा उदास मुख देखते ही वह सँभल गयी।

उसने पूछा, “आपकी गृहस्थी कहाँ हैं? आप कहाँ खाते-पीते हैं?”

“सब होटलमें। समझो, यह घर मेरा नहीं है। मेरा घर होटलमें है।”

“तुम्हारे कोई नहीं है बाबू?”

मैं चुप रहा। उसने रोकर कहा, “जभी...जभी...।”

उसका रोना देखकर मुझे बहुत बुरा लगा, मैंने उसे डाँटा, यह क्या करती हो, खबरदार चुपचाप लेटो रहो। मैं अकेला इसलिए हूँ कि मुझे यही जीवन पसन्द है। मुझे घर-गृहस्थीमें विश्वास नहीं है। औरतमें तो कतई विश्वास नहीं है। साढ़े तीन सौ रुपये महीने कमाता हूँ, और मस्तीसे फूँकता हूँ। मुझे किसीसे भी मोह नहीं, यहाँ तक कि अपनेसे भी नहीं।”

पर वह स्त्री बबलू ही थी, जिसने मेरे दुर्दान्त जीवनमें प्रथम बार मांह पैदा किया। उसने मेरा जीवन ही मोड़ दिया; न जाने कैसे-कैसे, कब, किस भाँति।

जैसे मैं गृहस्थ बनने लगा। घरमें धीरे-धीरे बर्तन इकट्ठे होने लगे—राशन और फुटकर चीजें। थोड़े ही दिनों बाद मेरी तरक्की हो गयी। मेरी तनख्वाह साढ़े चार सौ रुपये महीने हो गयी। तनख्वाह पाता, तो सीधे बबलू दीदीके हाथमें रख देता। वह मेरे लिए कपड़े बनवाती, माँकी भाँति दिन-रात मेरी सेवा और ममतामें लगी रहती। तरह-तरहके भोजन, पकवान, नाश्ते।

प्रायः एक वर्ष बाद, एक दिन बबलू दीदीने मुझसे हँसते हुए कहा, “अपने इस घरमें बहूरानीको कब लाओगे?”

“क्या कहा?”

“बहूरानी!...बहूरानी नहीं जानते हो? तुम्हारी दूल्हन...शट शादी होगी तुम्हारी!”

“देखो दीदी, तुम मेरे साथ बहुत मजाक न किया करो।”

“अरे, विवाह जैसी पवित्र चीजको तुम मजाक कह रहे हो दादा !”
 “है, मैं इस स्वर्गिक सुखको नहीं छोड़ सकता। मैं इस तरह बेहद मुखी हूँ। इससे अधिक सुख क्या हो सकता है ?”

“हो सकता है ! ब्याहमें इससे कहीं अधिक सुख है ! मुझे विश्वास है !”
 लेकिन यह बबलू दीदी थी कि मुझमें न जाने क्या-क्या भरती जा रही थी। उसके भावोंमें इतनी सचाई थी कि मैं उनमें सम्मोहित होकर बैठता जा रहा था। वह मुझे आधार बनाकर बिलकुल माँकी तरह स्वप्न देखती जा रही थी। और उन स्वप्नोंको साकार देखनेके लिए वह किसी साधनके प्रयोगसे बाज नहीं आती थी। इतनी पूर्ण आस्थासे वह मुझे देखती थी कि मुझे विवशतः उसकी प्रत्येक इच्छाके सामने समर्पित हो जाना पड़ता था। जल्द-से-जल्द घरमें बहू देखनेके लिए वह दिन-रात परेशान रहती थी। दफ़्तरसे आते ही एक दिन उसने मुझसे कहा, “ददा, आज यह फोटो देखो। कितनी अच्छी बहू है यह ! बस, इसीके माथपर जैसे सुहाग बरस रहा है। देखो न, चाँद जैसी है मेरी बहूरानी !”

“अरे, बहूरानी भी आन बैठों। फोटो ही देखकर शादी तय। बबलू दीदी, तू पागल है, पागल ! अगर इसमें एक बार गलती हो गयी न, तो यह सब बरबाद हो जाएगा। हमसे पछताते भी न बनेगा !”

“अरे, चुप भी रहो ! पता भी है ! बहू एम. ए. के आखिरी सालमें इम्तहान दे रही है। बस, मेरा मन तो इसीमें बस गया। कितना प्यारा नाम है—पूर्णिमा ! सुनो, बहूके पिताजी आये थे, मैंने सभी बातें कर ली हैं !”

“बिना लड़की देखे, बिना कुछ समझे-बूझे ?”

“समझना-बूझना क्या, शादी भगवान् करते हैं कि आदमी ! फोटो देख लिया, काफी है। अरे, शादीके पहले दूल्हनको देखनेकी इच्छा है क्या ? राम राम, ऐसा नहीं करना चाहिए, हाँ !”

“दीदी, तुझे हो क्या गया है ?”

“छोड़ो इन बातोंको ! पहले पूरी बात तो सुन लो। जल्दीसे कपड़े बदल डालो। दूल्हनके पिता आज आनेवाले हैं। छह बजेका समय मैंने दे रखा है। तुम्हें वे अपने घर ले जाएँगे। खूब जी भरकर बहूरानीको देख लेना। खुश हो न अब…… !”

“मान लो, यह सब ठीक है, लेकिन शादी होगी कैसे ? शादीमें इतने रुपये लगने हैं !”

बबलूने हँसते हुए कहा, “तुम रुपयोंकी चिन्ता क्यों करते हो ?……क्यों, लड़कीके बापसे भी रुपये लेनेके इरादे हैं क्या ?……अरे, तुम्हारी शादीके लिए हमारे पास रुपयोंकी कमी !……आओ, चलो मेरे संग। तुम्हारे ही बक्समें मैं रुपये दिखाती हूँ। कितने रुपये चाहिए तुम्हें ! आओ, ये लो रुपये……।”

“यह थी बबलू। पूर्णिमा, यह घर बबलू दीदीका ही है। समझो, हमारा अस्तित्व उसीके आशीर्वादसे है। उसीकी तपस्यासे आज यह सब कुछ है। बबलू न होती……तो……।”

“तो……तो क्या……यही न, कि तब मैं न होती !” पूर्णिमाने कहा।

“नहीं नहीं ! ऐसा क्यों, अकेली तुम क्यों, यह कहो कि हम न होते !”

उसी समय बबलू दीदीकी आवाज आयी, “आज दफ़्तर नहीं जाना है क्या ?”

पूर्णिमा बबलूको अजीब तरहसे देखती हुई चली गयी। बबलूने जैदेवको देखते ही कहा, “ददा, आज तुम कुछ उदास लग रहे हो ! ऐसे न रहो। आओ मेरे संग !”

“दीदी……।” जैदेवकी वाणी टूटकर रह गयी।

बबलूने कहा, “मैं जानती हूँ, तुम क्या कहने जा रहे थे। लेकिन वह भी कोई बात है। यह घर है, इसमें जीवन है। लड़ना-झगड़ना, बात-

विरोध तो होता ही रहता है—जहाँ चार बर्तन हैं, वहाँ आवाज होना स्वाभाविक ही है !”

“हम बर्तन हैं दीदी ! तुम क्या कहती हो ?”

उसी क्षण रामसरूप घोबीकी आवाज आयी। वह कपड़े लेकर आया था, दीदी उसकी आवाज सुनते ही वहाँसे चली गयी।

अपने कमरेमें पूर्णिमा क्रोधमें चुपचाप बैठी थी। न किसीसे बोलना, न कुछ कहना। जैदेव बाबू दफ्तर चले गये। नौकर-चाकर बहूजीको मनाकर हार गये। बबलू दीदीने रो-रोकर पूर्णिमासे क्षमा माँगी। पर बहूने तब भी न माफ़ किया।

दोपहरके समय पूर्णिमाके एक परिचित आये, रम्मन बाबू। आवाज देते ही उनसे बबलू दीदी मिली, “आइए बैठिए ! साहब तो दफ्तर गये हैं।”

“पूर्णिमाजी तो हैं ?”

“जी हाँ, वह तो है !”

“तो फिर ठीक है, मैं उन्हींसे मिलने आया हूँ—सीधे स्टेशनसे आ रहा हूँ।” इसी क्षण पूर्णिमा आयी, और प्रसन्नवदन मेहमानका स्वागत करते हुए जैसे गा उठी, “ओ हो रम्मन ! वाह !! बहुत खूब आये !!!” बबलूको उसी क्षण वहाँसे हटाते हुए बोली, “चली जाओ तुम यहाँसे, बेवकूफ़, बेअक़ल कहींकी !”

चुपचाप बबलू चली गयी। रम्मन बाबूने मुँह बनाकर कहा, “यह कैसी नौकरानी है ! बड़ी बेअदब और बेवकूफ़ है !”

“हमारे साहबकी प्यारी है—सिर चढ़ी हुई !”

“ऐसी औरतको तो बस, हण्टरसे मारे……!” रम्मनने बड़े गुस्सेसे कहा।

“अरे, ज़रा धीरे-धीरे बोलो……बड़े कान रखती है वह !” पूर्णिमाने रहस्य-स्वरसे कहा—“क्या बताऊँ, बड़ी मुसीबत है इस औरतकी वजहसे—कुछ पूछो नहीं !”

“खैर छोड़ो, सब ठीक हो जायगा, तुम चिन्ता न करो।” रम्मनने स्नेह-स्वरमें कहा।

“कहो शकुनका क्या हाल-चाल है ! उसकी शादी तय हुई कि नहीं !”

पूर्णिमाकी बातको रम्मनने बहुत तेजीसे काटते हुए कहा, “अरे, रे…… बस मैं उसी सिलसिलेमें तुम्हारे पास आया हूँ। उसकी शादी तय हो गयी है—बुलन्दशहरमें—लड़का इंजीनियर है।”

पूर्णिमा जैसे स्वप्न देखने लगी, “शकुन कितने ऊँचे भाग्यकी है ! हाई स्कूलसे एम० ए० तक वह मेरे साथ पढ़ी है—पढ़ने और परीक्षामें भी प्रथम और जीवनमें भी भाग्यशालिनी ! ऐसी किस्मत सबकी क्यों नहीं होती, रम्मन !”

रम्मनने पूर्णिमाके दोनों हाथ जैसे अपने हृदयतक लाते हुए कहा, “सुनो, अगले महीनेमें ही उसकी शादीकी तारीख है—तेरह जनवरी…… ओ हो ! मैं तो भूल ही गया। यह लो अपनी शकुनकी चिट्ठी और यह लो मेरा निमन्त्रण—‘हमारा प्रणय-पत्र’।”

अन्तिम अर्द्धवाक्यको रम्मनने रस-पूरित स्वरोंमें कहा। पूर्णिमा क्षण भर एक दृष्टिसे उसे ताकती रह गयी।

“सुनो, सुनो ! तुम सात जनवरीतक मेरे घर शाहजहाँपुर पहुँच जाओगी—नहीं तो शकुन मेरा सिर तोड़ देगी। और मेरी क्या पूछो, मेरा तो……दम ही निकल जायगा !”

पूर्णिमाने रम्मनके प्रेम-तप्त मुखपर हाथ रख दिया, “शी……धीरे-धीरे……कहीं वह सुन लेगी तो बस, नागिनकी तरह……।” उसी क्षण बबलूकी आवाज आयी, “बहुरानी, सारा खाना ठण्डा हो रहा है।” पूर्णिमाने झुँझलाते हुए कहा, “ज़रा तमीज़से बातें किया करो ! देखती नहीं, मेहमान आये हैं, और इन्हें……। तुम्हें भूख लगी हो तो जाकर खाना खा लो। हम लोगोंकी चिन्ता मत करो।”

बबलू अपना छोटा-सा मुँह लिये चली गयी। रम्मनने हँसते हुए कहा, “खूब किया। ऐसे लोगोंसे इसी तरह पेश आना चाहिए। तभी इनके होश ठिकाने लगे। लाओ इसी खुशीमें एक सिगरेट……” पूर्णिमाने रम्मनके होठोंपर सिगरेट जलाते हुए कहा, “मुझे सिगरेटका धुआँ बहुत पसन्द है।”

शनिवार होनेके कारण जैदेव दो बजे ही घर लौट आया। रम्मन पूर्णिमाको अपने घर ले जानेके विषयमें चर्चा करता रहा।

पूर्णिमाको अकेली पाकर रम्मनने दुखसे कहा, “संयोग देखो, आज ही शनिवार पड़ना था, मनहूस कितनी जल्दी आज दफ़्तरसे आ टपका।” पूर्णिमाने कटुतासे कहा, “उसी बबलू दुश्मनने बुलाया होगा, फ़ोनसे चुगली करती रहती है—दफ़्तरमें भी। बगलमें डाक्टर चमनके यहाँ टेलीफ़ोन है!”

बबलू दीदीसे राय लेकर जैदेवने पूर्णिमाको शाहजहाँपुर जानेकी आज्ञा दे दी। छह जनवरीको रम्मन पुनः आया। उसे देखते ही पूर्णिमा आह्लादसे भर गयी। वह जानेके लिए पूर्णतः तैयार बैठी थी। एक घण्टा पूर्व ही दोनों स्टेशन जाने लगे।

जैदेवने सहसा कहा, “बहूके सँग बबलू भी जायगी !”

यह खबर सुनते ही दोनों हतप्रभ रह गये।

पूर्णिमाने विरोध किया, “कोई जरूरत नहीं है बबलूका मेरे सँग। क्या करेगी वह मेरे सँग जाकर,—यहाँका काम-काज कौन देखेगा ?” रम्मनने भी कड़े स्वरोंमें समर्थन किया, “और फिर जब, मैं इनके सँग हूँ, और यह मेरे घर जा रही हैं, वहाँ नौकरोंकी जब कोई कमी नहीं है।”

बबलूने सहसा आगे बढ़कर कहा, “नहीं, मुझे बहूके सँग जरूर जाना चाहिए; कुछ भी हो, बाहरका मामला है।”

रम्मनने डाँटते हुए कहा, “अजी, वह बाहर नहीं, मेरा घर है !”

“फिर भी ब्याह-शादीका मामला है, मैं साथ रहूँगी तो बहूको सहारा रहेगा।”

बबलूके मुखसे यह बात सुनते ही बहू क्रोधसे भर गयी, पर कुछ बोली

नहीं। तांगा आया। वह रम्मनके सँग पीछे बैठी, बबलू चुपचाप आगे बैठ गयी।

शकुनकी ब्याह-शादी कराके पूर्णिमा अपने घर लौटी। जैदेवने दफ़्तरसे आते ही सबसे पहले पूर्णिमाको सामने पाया। पूर्णिमा जैसे पतिका प्रसन्नमुख स्वागत करने खड़ी हो। जैदेवने पत्नीको देखते ही गद्गद स्वरोंमें कहा, “यात्रासे जैसे तुम थक गयी हो। शादीमें बहुत काम करना पड़ा है। बहुत थकी-थकी कमज़ोर लग रही हो तुम। आराम करो चलकर ! खूब सो लो !” यह कहते-कहते जैदेव भीतर जाकर बबलू दीदीको पुकारने लगा। बबलूकी कोई आवाज़ नहीं आयी।

जैदेवने और उतावले स्वरोंमें पुकारा, “बबलूदीदी !……कहाँ है बबलू ?”

“वह तो बहूके सँग आयी ही नहीं सरकार !” मनोहरने दबे स्वरोंमें कहा। जैदेवने जैसे चीखते हुए कहा, “आयी ही नहीं ! क्या बकते हो ? फिर कहाँ गयी ?” पूर्णिमाने दूरसे कहा, “बात यह हुई कि एक स्टेशनपर…… पता नहीं……स्टेशनका नाम भूल गयी मैं ! हाँ वहाँ गाड़ी रुकी। उसे बहुत प्यास लगी थी। वह पानी लेने नीचे उतरी, इतनेमें ही गाड़ी छूट गयी।”

“गाड़ी छूट गयी !” जैदेव संवस्त हो गया। उसकी आवाज़ ही बैठ गयी। “गाड़ी छूट गयी ! और तूने तब तक जंजीर नहीं खींची। बोलो, तूने जंजीर नहीं खींची ? अगले स्टेशनपर पहुँचकर तूने कोई कोशिश नहीं की ? तू अकेली क्यों चली आयी ? बबलूको कहाँ छोड़ आयी ? क्यों……?”

“मैं क्या करती ?……वह चली आयेगी ! इसमें इस तरह घबड़ानेकी क्या बात है ?”—पूर्णिमा जैदेवको आश्वस्त कर रही थी। जैदेव जैसे पागल हो जायगा, “कहाँ है मेरी बबलू दीदी ! सही-सही मुझे जवाब दो ! प्यास तुझे लगी थी या उसको ? तूने उसे गाड़ीसे क्यों उतरने दिया ? और जब तुम यहाँ ग्यारह बजे ही पहुँच गयीं, तो तुमने मुझे फौरन आफ़िसमें फ़ोन किया ? क्यों अब तक चुप बैठी रह गयीं ?”

“वह स्वयं आ जायगी, इसमें इस क़दर घबड़ानेकी क्या बात !” यह

कहकर पूर्णिमा जैदेवके सामनेसे हट गयी। जैदेवको लग रहा था, जैसे उसके शरीरमें असंख्य पतले-पतले सर्प रेंग रहे हों। कभी उसे लगता था कि वह असंख्य हथौड़ोंके प्रहार सह रहा है। उसे कुछ नहीं सूझ रहा था। कुछ ही देर बाद, जब जैदेव स्टेशनके लिए भाग रहा था, उसी समय दरवाजेपर एक 'जीप' आकर रुकी। हार्न बजते ही जैदेव पास दौड़ा।

आगन्तुकने पूछा, "क्यों, जैदेव बाबूका घर यही है?"

"जी हाँ!" जैदेव भिखारीकी तरह आगन्तुकको देखता रह गया।

आगन्तुकने भरे कण्ठसे कहा, "आपकी ही नौकरानी बबलू थी?"

जैदेव बीच हीमें जैसे पुकार उठा, "नहीं, नहीं, नौकरानी नहीं, वह मेरी माँ थी।"

"माँ थी?" आगन्तुकका स्वर और भारी हो गया, "वह चलती गाड़ी-से न जाने कैसे गिर गयी। रेलके किनारे गाँववालोंने उसे उठा लिया। उधर मैं अपने खेतसे लौट रहा था। वह बेहोश थी, सिरमें बहुत गहरा घाव था। जीपमें रखकर मैं उसे 'कैण्ट' तक ले आया। सीधे मिशन अस्पताल लिये पहुँचा। ईश्वरकी कृपासे कुछ देरके लिए उसे होश हुआ। उसने डाक्टरोंके सामने केवल इतना ही कहा, 'मुझे बहने गाड़ीमेंसे नहीं ढकेला। मैं फिसलकर गिर गयी। मेरे दहाका नाम जैदेव है। मुझे उनसे मिला दो। एक बार दिखा दो मुझे! उसने आपका यह पता दिया, और कुञ्जियोंका यह गुच्छा दिया है।"

"फिर... फिर क्या हुआ?...?" जैदेव जैसे कुछ समझ नहीं पा रहा था। आगन्तुकने कुञ्जियोंका गुच्छा जैदेवकी हथेलीमें रखते हुए कहा, "फिर वह सदाके लिए चुप हो गयी।"

"फिर... तब... तब... क्या हुआ?" जैदेवकी हथेलीसे कुञ्जीका गुच्छा जमीनपर गिर पड़ा। और वह वहीं मूर्तिवत् खड़ा रह गया। जब आगन्तुक उसके सामनेसे जाने लगा, जैदेवने अजीब कठोरतासे कहा, "ठीक है। आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं ऋणी रहूँगा आपका।"

फिर वह पूर्णिमाके सामने गया, सिर झुकाये हुए वैराग्य स्वरमें बोला, "तुम रो रही हो! ठीक है। घबड़ाओ नहीं, मेरी बबलू माँने जब तुम्हें माफ़ किया है, तब मैं तुम्हें कानूनसे कोई सजा नहीं दिलाने जा रहा हूँ।" और उसने मनोहरको अपने पास बुलाकर कहा, जाओ, बबलूकी मिट्टी ले आओ, उसकी पुण्य-क्रिया करनी चाहिए न। मैं नहीं जा सकूँगा उसके पास!"

सब लोग बबलूको ले आये।

चाँदनी रात थी।

दरवाजेपर, नालीके पास कुञ्जियोंका गुच्छा पड़ा चमक रहा था। पर कहीं जैदेवका पता न था।

[रचनाकाल : १९५५]

सूर्यके लाल नयन

बहुत दिनोंसे प्रयत्न कर रहा हूँ कि मैं आपको भूल जाऊँ, पर अब ऐसा लग रहा है, यह प्रयत्न ही मुझे दिनों-दिन और तलमें खींचता चल रहा है। क्या करूँ, अजब-सी पीड़ा है, भूलभुलैया है यह : कोई निःशब्द अनायास, असमय पुकार उठता है, मैं किसी शून्यमें महज देखकर रह जाता हूँ। बहुत चाहता हूँ कि उस आवाज़को कोई उत्तर दे दूँ, पर शब्द साथ ही नहीं देते। पर आपके बँधे हुए शब्द मुझतक नित्य कैसे चले आते हैं, बड़ा अचरज है यह ! बड़ा अन्याय है मेरे प्रति ! आप न जाने कहाँसे आ-आकर कहती हैं, 'लो मुझे छू लो, मुझे बाँध लो', पर मैं असहाय रह जाता हूँ। लगता है कि आप मुझे पहले असहाय बना लेती हैं फिर अपना यह खेल रचती हैं : छू लो...बाँध लो...! कितना उल्टा है यह क्रम !

आपसे ही अब मैं पूछता हूँ, यह सब क्या है ? क्यों है ? मैं आपके शहरसे तीन-सौ मील दूर चला आया हूँ। मेरे, और आपके बीचमें पूरा

एक वर्ष आ खड़ा है, पर आज यह क्या है, जो मुझमें बड़े वेगसे गुँजता है ? यह कैसी मुधि है, जो मुझे मथ जाती है ? कोई सहस्र रूपोंवाली जादू-गरनी मेरे चारों ओर जाल खींचकर खड़ी हो जाती है और विहँस-विहँसकर कहती है, 'लो, पकड़ लो मुझे !' पर मेरे हाथ शून्य हीमें फँसे रह जाते हैं। मैं थक जाता हूँ, पर मेरे हाथ नहीं थकते। देखता हूँ, उनपर न जाने कहाँसे लाल कनेरके पुष्प बिखरे होते हैं।

अब मैं पछताता हूँ कि मुझसे आपकी भेंट ही क्यों हुई ? ठीक है, जीवनमें न जाने कितने लोग मिलते हैं, मनपर सब लोग अपनी-अपनी छाप देकर चले जाते हैं। यह क्रम अनादि है, शाश्वत है—इसमें कोई खास बात नहीं। पर आज मैं सोचता हूँ, कुछ लोग ऐसे क्यों होते हैं जो विछुडकर भी ज़रा भी दूर नहीं खिसकते, सब कुछ लौटाकर भी न जाने क्या छिपा ले जाते हैं ? रुठकर, बिखरकर, लड़कर जाते हैं, यहाँतक कि टूट जाते हैं, पर कहीं-न-कहीं वेधकर रह जाते हैं। एक ही दिन, कुछ ही लहमा, कुछ ही क्षणोंके संगसे इस तरह मनमें उतर जाते हैं—इतने गहरे, कि मन सदा हीसता रहता है।

मुझे खूब याद है, जिस दिन पहले-पहल मैंने आपको देखा था, सच, आप जैसे मुझे बिल्कुल नहीं दीखी थीं। मोटे पदोंसे बन्द दरवाज़ेके सामनेसे कोई भरे प्राणोंसे गुनगुनाता हुआ चला जाता था—रोज़, कई रोज़से। यह बल्कि मैंने उस दिन पहचाना जिस दिन वह गुनगुनाता हुआ स्वर सहसा सब कुछ वेधकर एकाएक मेरे सूने कमरेमें तिर गया :

तोमार भ्रामार एइ विरहे भ्रन्तराले

कत आत सेतु बाँधि सुरे-सुरे ताले-ताले ?

वह जगह मेरे लिए नयी थी। वहाँ मेरा कोई भी परिचित न था। सब नयासे नया था। मैं बड़ा सूना और अकेला अनुभव कर रहा था। इसलिए मैं चुपचाप अपने कमरेमें अकेला बैठा हुआ कार्य किया करता था, बल्कि यों समझिए, कि कार्योंमें अपने आपको खपाये रखता था।

और एक दिन अवश पदोंको पार करके मैंने आपको देखा : यह कौन है रोज-रोजकी इस तरह गुनगुनानेवाली 'तोमार आमार एइ विरहे अन्त-राले' आप मेरे कमरेसे बहुत आगे बढ़ गई थीं। उस पल मैंने देखा, कन्धे-से पीठपर झूलता हुआ आपकी पीली साड़ीका सुनहला आँचल, बड़ा-सा जूड़ा और उसमें कोई एक उज्ज्वल पुष्प।

अगले दिन !

फिर और अगले दिन : आपके व्यक्तित्वकी वही गति, वही छन्द, वही लय। एक दिन अनजानेमें ही अपनी मेज़की छोटी डायरीपर अस्पष्ट शब्दोंमें लिखा : फेंशनबल गर्ल ! पर उसके सामने प्रश्नचिह्न भी लगा दिया।

दूसरे दिन, उसे काटकर स्पष्ट शब्दोंमें लिखा, एक सेंट्रिक लेडी। और अगले कई दिन, जब आप मेरे कमरेके सामनेसे बिलकुल चुपचाप चली जाने लगीं, तब मैंने अपनी उस डायरीपर पिछला सब कुछ काटकर बड़े ही सुन्दर शब्दोंमें लिखा—

“वेरी गुड वुमन...स्वीट...लवली !”

और शायद अगले ही दिन, पता नहीं कौन मेरे कमरेमें अपने किसी कार्यसे आया और मुझसे आपके विषयमें बात करने लगा।

पहले उसने आपका पूरा नाम बताया—यूथिका सेन। उसी क्षण यह नाम मुझे कुछ परिचित-सा लगा। फिर उसने तत्काल कहा—

“यूथिकाजीसे तो आपका पहलेका परिचय है।”

“मेरा परिचय ?” मैं खुली आँखोंसे उसे देखता रह गया। वह बताने लगा, “यूथिकाजी कह रही थीं, आपके संग वह युनिवर्सिटीमें पढ़ी हैं।”

“मेरे संग युनिवर्सिटीमें पढ़ी हैं...यूथिका...यूथिका सेन...वी० ए०में संस्कृत...एम० ए० में अर्थशास्त्र...जिसने कभी मेघदूतका 'बैले' प्रस्तुत किया था ? जो 'यशोधरा' मूक नृत्यकी पार्व्व गायिका थीं ? शकुन्तलाकी भूमिकामें जो...नहीं...नहीं वह यूथिका सेन यह हर्गिज नहीं हो सकती। वह यह होगी ही नहीं...नहीं होगी...नहीं होगी। मेरे सामने कुछ क्षण

पहले जो सुनहरे पद उठते जा रहे थे, उसकी डोर जैसे एकाएक कहीं फँस-सी गई।

मैं चुपचाप सहेजने लगा। वह यूथिका सेन तो कहीं विदेशमें है—किसी 'एम्बेसी' में या कहीं और बहुत बड़े स्थान और पदपर।

पर मुझमें अजीब द्वन्द्व छिड़ा। उस दिन मुझमें प्रबल इच्छा जगी कि आपसे मिलूँ, परिचित होऊँ। और उस दिन मैं आपसे मिलने चला। इधर-उधर, चारों ओर आपको ढूँढ़ता फिरा। पर आप मिली नहीं, और उस दिन मुझे अपने अकेलेपनका बड़ा तीखा बोध हुआ।

उस शामको जब मैं दफ्तरसे जाने लगा, मैंने सहसा नीचेके एक कमरे-में देखा, सात-आठ लोग बैठे चाय-सिगरेट पी रहे हैं और उस परिधिमें वही गुनगुनानेवाली लड़की बैठी है—वही, बिलकुल वही। पर क्या वही यूथिका सेन है ? मैं यह विचारता हुआ एक बार फिर उसे देख लेनेके लिए घूमा कि आप मुझे सामने दीख गईं।

साफ़ तो दीखीं आप, पर मुझे सहसा विश्वास न हुआ कि आप ही वह यूथिका सेन हैं, या हो सकती हैं।

अगले दिन !

और अगले दिन। आपसे मेरी भेंट हुई। सब सही निकला। मैं सही, आप सही—सब वही; अजीब बात।

यह सब क्या है ? क्यों है ?

आप जैसी लड़की यहाँ ? इतना रूप, इतनी कला, इतना... आप मेरे सामने बिलकुल हैरान बैठी थीं। बार-बार आपका मुख मुर्ख हो आता था और कभी-कभी उदास और विवर्ण। हम दोनों कितनी बातें कर डालना चाहते थे, पर हम दोनों चुप रहे जैसे यही अभिव्यक्तिका एकमात्र माध्यम था।

और एक दिन, दोपहरके ठीक एक बजे जब आप मेरे कमरेमें नहीं आईं तो मुझे ऐसा लगा आपका स्वर मेरे पूरे कमरेको कहीं बाँधे ले जा रहा है :

तोमार आमार एइ विरहे अन्तराले

कत आत सेतु बांध सुरे-सुरे ताले-ताले ।

और मैं आपको ढूँढने निकला ।

बाहरके शीशेसे मैंने एक बन्द स्टूडियोमें आपको देखा : सबसे छिपकर, वहाँके पूरे वातावरणसे अपने आपको असम्पृक्त कर । आप तब एक मुद्रामें तानपुरेपर स्वर साधे बैठी थीं । मुदित आँखें, विस्मृत-सी, आप जैसे तानपुरे-में छिप गई थीं । स्वर, लय, संगीत, रूप, साधना और कोई विरह-सा तत्त्व, जैसे सब एक साथ मिल गये थे ।

वही मुख, वही छवि, वही गम्भीर मुद्रा, वही रसमयता, उसपर और भी कुछ, विहाग जैसा, मल्हार जैसा । सँहली माथपर गोरोचनका टीका, कलाइयोंमें केवल कंगन, पूर्णचन्द्राकार जूड़ेमें पीले कनेरका एक पुष्प—और कुछ नहीं—कुछ नहीं । केवल संगीत, केवल रस, केवल सम्मोहन !

वास्तवमें उस क्षण मैंने आपको पहचाना, मन-ही-मन नत होकर मैंने आपको प्रणाम कहा । आपको अपलक देखता रहा, जैसे पूजा कर रहा हूँ । जिस ताल, स्वर-छन्दमें आपकी पलकें मूँदी थीं, वह सब जैसे आपके मुखपर शत-शत चित्रित राग-रागनियोंके साथ उभरता जा रहा था । मैं सब कुछ इस तरह देखता रहा जैसे कोई कला और छविको एक ही साथ स्पर्श करके देखे ।

मैं नहीं जाता, अन्ततक मृगवत् वहाँ खड़ा रहता, पर मेरे पाँव न जाने क्यों मुझे भगा ले गये । मैं क्या करता ?

उसके बाद ही जब आप मुझसे मिली थीं, और मैं मरा-मरा-सा एकदम चुप था, और आप मुझसे बातें करना चाह रही थीं, तो मैं आपसे क्या बात करता ! कैसे करता ! जो आप खी गयी थीं, एकाएक उसी स्तरपर वापस मिल जानेकी मैं आपको क्या बधाई देता । कैसे अपने विगतको आपके अतीतसे बाँधकर अपनेको वर्तमान करता ।

मैं स्वार्थी !

कितने मोहका स्वार्थी !

आपने मुझसे हँसकर कहा, “आप तो अब बहुत ही कम बोलते हैं ?” भावपूरित, माथा झुकाये मैंने उत्तर दिया, “आप बताइए न, आप तो……!”

उस क्षण मेरा कण्ठ भर आया और आपकी आँखें !

क्या ही अनुभूति थी उस अकथ मौनमें !

और फिर हमलोग सदा मिलने-जुलने लगे ।

संग-संग चाय पीते । दोपहरको वहाँसे निकलकर कॉफ़ी-हाउस चले जाते जैसे न आपसे कहीं अकेले रहा जाता था, न मुझसे ।

आप जहाँ रहती थीं, उस सड़क तक मैं आपको अक्सर छोड़ आता था—चाहे शाम हो, चाहे रात हो । पर मैं उस घरके भीतर न जाता था—न आप मुझे विवश ही करती थीं ।

एक बार आपसे दो दिनों तक भेंट न हुई । न जाने कहाँ थीं आप !

अजन्ताके एक पिवचर कार्डपर जिसमें उड़ती हुई अप्सराएँ थीं, मैंने आपको यह लिख भेजा था :

शिरसि बकुलमाला मालतीभिः समेता

विकसितनवपुष्पैर्युथिका कुड्मलैश्च ।

विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां

रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः ॥

उत्तरमें आपने मुझे एक पुस्तक भेंट की थी; रेशमी कपड़ेसे नयी जिल्द बाँधकर, उसके हर पृष्ठमें कदम्बके पुष्पकी पंखुरी बिखेरकर । और उसके प्रथम कोरे पृष्ठपर आपने लिखा था :

सूर्ये रक्तिम नयने तुमि मेघ !

दाओसे कज्जल पाडाओ घूम,

वृष्टि र चुम्बन बियारि चले जाओ

अंगे हर्षेर पडू क धूम !

सूर्यके लाल नयनमें हे मेघ ! तुम काजल डालकर सुला दो । दृष्टिके चुम्बन खेरकर तुम चले जाओ—हमारे अंग हर्षसे फड़क उठें !

इसके बाद जब आप मिलीं तो आप बहुत प्रसन्न थीं—अनवरत छविपर मुसकान बरस रही थी। आपने शिशुवत् मेरे हाथको पकड़कर कहा, “मुझसे पढ़ना-लिखना सब छूट चला था—अब मैं फिर पढ़ने लगी हूँ। जो आपने मुझे लिखा था न, वह कालिदासके ऋतुसंहारसे है, इतना तो मुझे याद पड़ रहा था, पर किस सर्गसे था, मुझे कुछ भी न याद था। कितनी बुरी बात है ! हाय, मेरा इतना पतन !”

यह कहते-कहते आप मुक्त कण्ठसे हँस पड़ी थीं। मेरा वह कमरा भर गया था। आपने तब कहा, “मैंने बहुत सारी किताबें खरीद डालीं ! जो अच्छी-अच्छी किताबें माँके पास पड़ी थीं—आगरेमें वह भी सब उठा ले आयी ! जी, क्या समझते हैं आप ? पता है आपको, यूथिका एक बार फिर लौट आयी।”

किसी गहनतम भावसे मेरी आँखें भर आयीं।

आपका उस क्षणका आलोकित मुख अब भी मेरी आँखोंमें है। और आपका एक छोटा-सा पत्र भी मेरे पास है।

इससे बहुत पहले, मैंने हँसी-हँसीमें एक दिन आपसे पूछा, “आप रोज़ कितनी देरतक तानपुरेपर रियाज़ करती हैं ?”

उस क्षण आप इस तरह निस्तेज पड़ गई थीं, जैसे कोई साज झन-झनाकर टूट जाये। आपका वह उदास मुख, अर्थहीन आँखें अब भी मेरे पास हैं।

जैसे आप मेरे प्रश्नसे कहीं-न-कहीं डर गई हों। और बिना कुछ बोले, मेरे पाससे चली गईं।

उस दिन घर लौटते समय मुझे आपका पत्र मिला। पत्र क्या पत्रके रूपमें मेरी एक जिज्ञासाके उत्तरमें आपके असंख्य प्रश्न। एक प्रश्न, असंख्य प्रश्न और उत्तर एक भी नहीं, दूर-दूर तक नहीं।

उस पत्रका पहला पेज आपने बरबस मुझसे छीन लिया था, पर दूसरा शेष पृष्ठ अब भी मेरे पास है। उस पृष्ठकी हर पंक्ति हर अक्षरको मेरी अमित श्रद्धा, मेरा निश्चल मोह !

“जिस दिन आप यहाँ आये, मैं उसी क्षण आपको पहचान गई। युनिवर्सिटी-जीवनसे इस जीवन तकका अंतराल जैसे उसी क्षण पट गया। पर मैं तो अजीब संकोच और लाड़में गड़ने लगी। और मैं अपने आपको कोसने लगी। मेरी अकल देखिए, यहाँतक कि मैं आपको भी बुरा-भला कहने लगी। इस अनजानी नगरी और इस अज्ञात जीवनमें भला आप क्यों आ गये ? मैं सोचती हूँ, आपसे क्योंकर भेंट हो गई। आप तो वही हैं न, जो जानते हैं कि यूथिका सेन, वही, हूवहू वही यूथिका सेन है—जस्टिस सेन-की लड़की, नृत्य और संगीतमें प्रथम, एम० ए० में प्रथम।”

“अच्छा छोड़िए यह सब ! सब कहना मुझे अच्छा नहीं लगता। वस, यही समझिए, सात वर्षों बाद मैंने उस दिन तानपुरा उठाया था, जिस दिन आप शीशेसे मुझे देखकर चुपकेसे चले गये थे। आपको लगा होगा कि मैं उसी युनिवर्सिटी कालकी तरह कलाके प्रति उत्सर्ग और श्रद्धा भाव रखती हूँ। तभी आपने प्रश्न किया न, कि आप रोज़ कितने घण्टे रियाज़ करती हैं। रियाज़...रियाज़...रियाज़ और साधना किसे कहते हैं। मैं तो नौकरी करती हूँ। कला...कला किसे कहते हैं ? कला तो ड्यूटी बनी है यहाँ। पर अब मैं रियाज़ करती हूँ। उस दिनसे मैं पूरे दो घण्टे रियाज़ करती हूँ। मैंने सोचा, भला आप क्या कहेंगे मुझे ? आप क्या सोचेंगे ! आपका वह विश्वास न टूटे, सच मैं सहम गई। तबसे मैं सदा रियाज़ करती हूँ। हमेशा कल्लंगी। देखिएगा नृत्य भी नहीं भूली हूँ, अभ्यास छूट गया है, पर कोई बात नहीं। सब नया ही तो करना है, जो अपना अंग है, वह विछुड़-कर कहाँ जाएगा ?”

आपका इतना ही खत मेरे पास है। मैं समझता हूँ, मेरे पास काँका

खजाना है। नीलमदेवीकी किसी राजकन्याका स्वप्न है। किसी पुजारिनकी आरती भरी थाल है मेरे पास।

उस प्रश्नके बाद, मैंने फिर कभी आपसे कोई प्रश्न न किया। और यह तो आपकी कृपा थी, आपका अपार स्नेह था मुझपर कि आपने मुझे इतनी प्रीति, इतना विश्वास दिया। आपने एक दिन मुझे झकझोरकर कहा, “अजी, सुनिए तो, बड़ी मजेदार बात हुई। मेरा एंगेजमेण्ट एक कैप्टनसे हुआ। पापा-अम्मीको बेहद पसन्द था वह। मुझे भी अच्छा लगा था। बड़ी प्यारी वाइलिन बजाता था, लेकिन भलामानुस इतना अंगरेज था कि हिन्दुस्तानकी कोई चीज ही आपको नहीं पसन्द पड़ती थी। यहाँकी क्लासिक कलासे तो उसे बेहद चिढ़ थी। मैं सोचती थी सब ठीक हो जाएगा। चिढ़को रसिकतामें बदल दूंगी। पर सब बेकार सिद्ध हुआ। समझिए सब बिखर गया जिसे विवाह कहते हैं। अम्मी और पापा बहुत हैरान हुए, अच्छी-से-अच्छी शादियाँ तै करने लगे। पर मैंने फंसला किया, शादी करूंगी भी तो अब ज़रा रुककर करूंगी। अब क्या जल्दी। फिर अम्मी-पापाको मनाकर, उससे आज्ञा लेकर यहाँ चली आई। यहाँ ही क्यों आई? यँ ही बस चली आई। अम्मीके पास जाती हूँ, तो फिर यहाँ लौटनेको जी नहीं करता। और जब यहाँ पहुँचती हूँ तो कहीं जानेको जी नहीं करता।...जबसे आप मुझे मिले हैं, सच, तभीसे मैं इधर-उधर घूमने लगी हूँ, वरना वह निवास-स्थान और यह नौकरी। पर अब बीचमें वह आ गया जो न जाने कबसे छूट गया था, जहाँसे मैं गुम हो गई थी।”

उस दिन आप शिशुवत् रूठी थीं। किसपर, क्यों, कबसे यह आप भी न जानती थीं। मैं जब-जब आपको मनानेके लिए खुल जानेके लिए कुछ कहता था, तब आप मुझे बस देखकर रह जाती थीं। वह भरी-भरी बदली न बरसती थी न खुलती थी, बल्कि वह जैसे घुमड़ते हुए बादलोंके काले बादलोंसे कहती थी, ‘तुम मेघ दाओसे कज्जल पाडओ घूम, विष्टिर चुम्बन विथारि चले जाओ।’

मैं उस दिन, उन क्षणोंमें आपके संग पूरी सन्ध्या घूमता-डोलता हुआ आपके यहाँ चला गया—बिलकुल आयासहीन, सहज गतिसे, जैसे मैं रोज आपको सड़कपर न छोड़कर सदा आपके कमरेमें छोड़ता था।

और जब मैं बैठकमें आपके सामने खड़ा हुआ, बिदा लेकर लौटनेके लिए, तब आपने मुझसे कुछ मुदित होकर, परिहासके स्वरमें कहा, “आज तो आप मेरे यहाँ आ गये! बोलिए आ गये न! आप तो कभी नहीं आये!” यह कहते-कहते आपका स्नेह-स्वर फिर रूठ गया।

तब मुझे ऐसा लगा, जैसे नीर भरे काले बादलोंके जहाज़, पंख बाँधकर मुझे कहीं उड़ा ले जा रहे हैं, उड़ा ले जा रहे हैं।

तब आपने री वाणीसे कहा, “आज मैं बिदा न दूंगी!” मुझे अनुभव हुआ, जैसे यूथिकाके अनन्त पुष्प, लाल-पीले कनेरकी कलियाँ, केतकीकी कलियाँ, कदम्बके नये फूल और काजलके ढेर जैसे बादल मुझे बाँध ले गये कहीं।

मैंने कहा, “रुकूँगा, जबतक बिदा न दोगी, नहीं जाऊँगा।”

आप बिहँसकर मेरे सामनेसे डोल गई। कुछ देर बाद मेरे पास आई। मुझे उठाती हुई शिशुवत् बोलों, “चलिए, आपको अपना पूरा घर दिखाऊँ।”

मैं छायाकी तरह चुपचाप सँग हो गया।

“देखिए, यह दूसरा कमरा मेरा स्टडी और स्लीपिंग रूम। यह देखिए छोटा-सा किचन। यह स्टोव, यह हीटर! अँगोठी चूल्हा मेरे पास नहीं, बड़ा धुँआ उठता है उनमें। यह मेरी आया है...बन्नी...बन्नी...ओ बन्नी!”

“आई रानी बेटी!”

काली, दुबली-पतली, बिलकुल सफ़ेद वस्त्र पहने हुए साठ वर्षकी वह आया सामने खड़ी हुई। उसके डण्डे जैसे निर्जीव हाथोंमें चाँदीकी ढीली-ढीली चूड़ियाँ।

“यह अक्सर बीमार रहती है, इलाज करा रही हूँ।……देख बन्नी, नमस्ते कर बाबूको।”

“नमस्ते बाबू……परमात्मा……!”

“नमस्ते !”

आप मुझे झट आगे खींच ले गई, “यह मेरा छोटा-सा बसोचा है। देखिए न चारों ओर लतर-ही-लतर है—बेला, चमेली, माधवी, अपराजिता……और बीचमें ये क्रोटनके गमले हैं। अब इन सारे गमलोंको बाहर बरामदे में सजा दूँगी, और इस जमीनको गुड़वाकर, खूब खाद डालकर बहुत सारे पुष्प लगावाऊँगी। जब धरती है, सो भी जब इतनी अच्छी तो उसपर गमले रखकर उसे क्यों ढके रहूँ? बुरी बात है न यह?”

और आप हँसने लगीं। एक-एक करके उस छोटे, पर विशाल घरको आपने मुझे इस तरह दिखाया, जैसे कोई किसीको अपना पूरा घर सौंप रही हो।

मैं अब भी देखता हूँ, सदा, हर क्षण—वह पतली-सी, छोटी चन्दनकी चौकी, जिसपर आपका तानपूरा टीका रखा है, दूसरी ओर श्रीमद्भागवत, उत्तररामचरितम्, मेवदूत और बाइबिल ग्रन्थ रखे हुए हैं। दीवारपर कृष्णकी मूर्तिके संग ‘क्रॉस’ पर जीजसकी प्रतिमा, और दोनोंपर कदम्बका एक ही पुष्पहार।

उस रात अनेक पुष्पोसे आपने मेरी अंजलि भर दी। बैठकमें चाँदनी जैसी मेरी सेजपर पुष्प ही पुष्प। मैं कहीं सोऊँ! छूते ही सब मैले हो जाएँगे, कुम्हला जाएँगे। रातके एक बज रहे थे। बंगलेके सारे वातावरणमें रजनी गन्ध जैसे गा रही थी : ‘श्री रजनी गन्ध तोमार……!’ मैं उस सेजको देखता हुआ खड़ा था। पर्देके किनारेसे भीतर देखा, आप उसी पतले तख्तपर, तानपूरा और पुस्तकोंके बीच घुमड़कर सो गई थीं, जैसे कोई नन्हा-सा बच्चा धूलमें खेलते-खेलते सो गया हो। सामनेसे प्रकाश आपके मुख-

पर पड़ रहा था—नये खिले कदम्बके फूल जैसे मुखपर। सामने ऋतुसंहारकी पोथी खुली थी, उसपर घुँघराले केशकी एक लट सिहर रही थी।

मैं खड़ा देखता रहा : देखता रहा, और मेरे प्राणोंमें कुछ बरसने लगा :

तोमार आमार एइ विरले अन्तराले

कत आत सेतु बाँधि सुरे-सुरे ताले-ताले

झुककर उस देहरीपर मैंने अपना माथा टेका। सेजपर बिछे हुए सारे पुष्पोंको आँखोंसे लगाया और वहीसे आपके चरणोंमें बिखेर दिया।

और उसी क्षण मैं चला आया। यहाँ चला आया, सैकड़ों मील दूर! मैं आपसे क्षमा नहीं माँगता। वह सब इसके परे है। पर सदा सोचता हूँ फिर कभी क्या आपसे भेंट होगी। चाहता हूँ एक बार आपके गीत और मुनूँ : आपको और देखूँ! और देखूँ! विरहके अन्तरालके पार हमें सुर-तालके सेतु ही पहुँचा सकते हैं, या और भी कुछ!

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी
मौलिक-साहित्यका निर्माण



संस्थापक

साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा

श्रीमती रमा जैन

मुद्रक—मन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी